शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूर शिक्षण केंद्र

साहित्यशास्त्र

(शैक्षिक वर्ष 2015-16 से)

बी. ए. भाग–3 हिंदी

सत्र–5 पेपर 8

सत्र–6 पेपर 13

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2015
बी. ए. भाग 3 (हिंदी : बीजपत्र-8 और 13)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 1,500

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्र. कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-81-8486-609-4

★ दूर शिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी-
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)

★ दूर शिक्षण विभाग-विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के विकसन अनुदान से इस साहित्य की निर्मिति की है।

दूरशिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

सलाहकार समिति

प्रा. (डॉ.) डी. बी. शिंदे
मा. कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एम. एम. साळुंखे
मा. कुलगुरू,
यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नाशिक

प्रा. (डॉ.) के. एस. रंगाप्पा
मा. कुलगुरू,
म्हैसूर विश्वविद्यालय, म्हैसूर

प्रा. पी. प्रकाश
मा. प्र-कुलगुरू,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नवी दिल्ली

प्रा. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २,
११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

डॉ. अनिल गवळी
अधिष्ठाता, कला व ललितकला विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्य डॉ. जे. एस. पाटील
अधिष्ठाता, सामाजिक शास्त्रे विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्य डॉ. सी. जे. खिलारे
अधिष्ठाता, विज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. आर. जी. फडतरे
अधिष्ठाता, वाणिज्य विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्य डी. आर. मोरे
संचालक, महाविद्यालय व विद्यापीठ विकास मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्र. कुलसचिव, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. एम. ए. काकडे
परीक्षा नियंत्रक, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. एन. व्ही. कोंगळे
वित्त व लेखा अधिकारी, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

कॅप्टन डॉ. एन. पी. सोनजे (सदस्य सचिव)
प्र. संचालक, दूरशिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

अध्ययन मंडल : हिंदी

डॉ. वसंत दादू सुर्वे
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर.
आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, आष्टा, ता. वाळवा, जि. सांगली.

- **डॉ.श्रीमती पद्मा पाटील**
  हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
- **डॉ. सुनील बापू बनसोडे**
  जयसिंगपुर महाविद्यालय जयसिंगपुर
- **डॉ. गजानन सदाशिव भोसले**
  डी. पी. भोसले महाविद्यालय, कोरेगांव, जि. सातारा
- **डॉ. रघुनाथ गणपती देसाई**
  श्रीमती मथुबाई गरवारे कन्या महाविद्यालय, सांगली
- **डॉ. रामा कृष्णा नकाते**
  शहाजी राजे महाविद्यालय, खटाव, जि. सातारा.
- **प्राचार्य डॉ. कृष्णा राजाराम पाटील**
  तुकाराम कोलेकर आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, नेसरी, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर.
- **डॉ. भीमराव ज्ञानू पाटील**
  डॉ. पतंगराव कदम महाविद्यालय, सांगली.

	सत्र 5	सत्र 6
★ **प्रा. डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत** चंद्राबाई शांताप्पा शेंडूरे कॉलेज, हुपरी	**1**	**-**
★ **प्रा. डॉ. मिलिंद नामदेव साळवे** विश्वासराव नाईक कला, वाणिज्य आणि बाबा नाईक विज्ञान महाविद्यालय, शिराळा	**2**	**-**
★ **प्रा. मारुफ समशेर मुजावर** कला व वाणिज्य महाविद्यालय, पुसेगांव, ता. खटाव	**3**	**-**
★ **प्रा. डॉ. आर. के. नकाते** शहाजीराजे महाविद्यालय, खटाव, जि. सातारा	**4**	**-**
★ **प्रा. सर्जेराव यशवंत भोसले** राजा श्रीपतराव भगवंतराव महाविद्यालय, औंध, ता. खटाव	**-**	**1**
★ **प्रा. संग्राम य. शिंदे** आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा	**-**	**2**
★ **प्रा. डॉ. संजय पिराजी चिंदगे** दे. आ. ब. नाईक कॉलेज, चिखली	**-**	**3**
★ **प्रा. डॉ. जी. एस. भोसले** डी. पी. भोसले कॉलेज, कोरेगांव	**-**	**4**

■ **सम्पादक** ■

डॉ. व्ही. डी. सुर्वे
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
आर्टस् ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, आष्टा,
ता. वाळवा, जि. सांगली.

प्रा. डॉ. जी. एस. भोसले
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
डी. पी. भोसले कॉलेज, कोरेगांव

अपनी बात

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की दूरशिक्षा योजना के अंतर्गत बी. ए. भाग-3 हिंदी विषय के छात्रों के लिए निर्मित अध्ययन सामग्री नियमित रुप से प्रवेश न ले पाने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने के संकल्प का सुफल है। इसमें एक ओर विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता दिखाई देती है, तो दूसरी ओर शिक्षा से वंचित छात्रों को अध्ययन सामग्री सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता। बी. ए. 1, 2 तक की अध्ययन सामग्री से दूरशिक्षा योजना के छात्र जिस तरह लाभान्वित हुए हैं, उसी तरह बी. ए. 3 के छात्र भी प्रस्तुत स्वयं-अध्ययन सामग्री से लाभान्वित होंगे, यह विश्वास है।

दूरशिक्षा के छात्रों का महाविद्यालयों तथा अध्यापकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कोई संबंध नहीं आता। उनकी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्ययन सामग्री को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरुप तथा अंक-वितरण को ध्यान में रखकर अध्ययन-सामग्री को आवश्यकतानुसार विस्तृत तथा सूक्ष्म रुप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमें आशा ही नहीं, बल्कि विश्वास भी हैं कि प्रस्तुत अध्ययन सामग्री बी. ए. 3 के छात्रों के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

प्रस्तुत सामग्री सामूहिक प्रयास का फल है। इकाई लेखकों ने अपनी-अपनी इकाईयों का लेखन समय पर पूरा कर इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिवाजी विश्वविद्यालय के मा. कुलगुरू, कुलसचिव, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय विकास मंडल के संचालक, दूरशिक्षा विभाग के संचालक एवं उनके सभी सहयोगी सदस्यों ने समय-समय पर आवश्यक सहयोग दिया। अतः इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

धन्यवाद।

– संपादक

अनुक्रमणिका

इकाई	पाठ्यविषय	पृष्ठ
	सत्र-5	
1.	काव्य/साहित्य- स्वरूप, तत्त्व, प्रेरणा, प्रयोजन	1
2.	शब्दशक्ती, काव्यगुण, काव्यदोष	35
3.	रस : स्वरूप, रस के अंग, रस के भेद	48
4.	अलंकार : शब्दालंकार और अर्थालंकार	77
	सत्र-6	
1.	काव्यभेद : महाकाव्य, प्रगीत, गजल	85
2.	नाटक, उपन्यास, डायरी	111
3.	आलोचना : स्वरूप, प्रकार, आलोचक के गुण	135
4.	छंद : मात्रिक और वर्णिक	148

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे–

(१) इकाई में क्या दिया गया है।

(२) आपसे क्या अपेक्षित है।

(३) विशेष इकाई के अध्ययन के उपतरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं–अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं–अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

सत्र V : इकाई 1

काव्य / साहित्य : स्वरुप, तत्त्व, प्रकार, प्रयोजन

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय-विवेचन

1.3.1 काव्य / साहित्य : स्वरुप

1.3.1.1 संस्कृत आचार्यों के काव्य-लक्षण

1.3.1.2 प्राचीन हिंदी आचार्यों के काव्य-लक्षण

1.3.1.3 आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण

1.3.1.4 पाश्चात्त्य आचार्यों के काव्य-लक्षण

1.3.1.5 निष्कर्ष

1.3.2 काव्य / साहित्य : तत्त्व

1.3.2.1 भावतत्त्व

1.3.2.2 कल्पना तत्त्व

1.3.2.3 बुद्धि तत्त्व

1.3.2.4 शैली तत्त्व

1.3.2.5 निष्कर्ष

1.3.3 काव्य : प्रयोजन

1.3.3.1 संस्कृत आचार्य : काव्य-प्रयोजन

1.3.3.2 प्राचीन हिंदी आचार्य : काव्य-प्रयोजन

1.3.3.3 आधुनिक हिंदी विद्वान : काव्य-प्रयोजन

1.3.3.4 पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजन

1.3.3.5 निष्कर्ष

1.3.4 काव्य : प्रकार

1.3.4.1 दृश्य काव्य

1.3.4.1.1 नाटक

1.3.4.1.2 एकांकी

1.3.4.1.3 गीतिनाट्य

1.3.4.2 श्रव्य काव्य

1.3.4.2.1 गद्य

1.3.4.2.1.1 उपन्यास

1.3.4.2.1.2 कहानी

1.3.4.2.1.3 निबंध

1.3.4.2.1.4 रेखाचित्र

1.3.4.2.1.5 संस्मरण

1.3.4.2.1.6 जीवनी

1.3.4.2.1.7 आत्मकथा

1.3.4.2.1.8 रिपोर्ताज

1.3.4.2.1.9 यात्रा वृत्तांत

1.3.4.2.1.10 साक्षात्कार

1.3.4.2.2 पद्य

1.3.4.2.2.1 प्रबंधकाव्य

1.3.4.2.2.1.1 महाकाव्य

1.3.4.2.2.1.2 खंडकाव्य

1.3.4.2.2.1.3 एकार्थ काव्य

1.3.4.2.2.2 मुक्तक काव्य

1.3.4.2.2.2.1 पाठ्यमुक्तक

1.3.4.2.2.2.2 गेय मुक्तक (गीतिकाव्य)

1.3.4.2.2.3 चंपू काव्य

1.3.4.3 निष्कर्ष

1.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

यह इकाई पढकर आप,

1. काव्य/साहित्य शब्द के अर्थ और स्वरूप से परिचित होंगे।

2. काव्य/साहित्य की संस्कृत हिंदी तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बनाई गई विविध परिभाषाएँ पढकर साहित्य का स्वरूप समझने में सक्षम होंगे।

3. काव्य/साहित्य के विभिन्न तत्त्वों की जानकारी हासिल करेंगे।

4. काव्य/साहित्य के विभिन्न तत्त्वों से परिचित होंगे।

5. काव्य/साहित्य के विविध प्रयोजनों से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना :

काव्यशास्त्र को काव्यालोचन, काव्यमीमांसा, साहित्यशास्त्र तथा साहित्य सिद्धांत आदि नामों से भी पुकारा जाता है। काव्य का नियमन करनेवाले शास्त्र को काव्यशास्त्र कहा जाता है। दुनिया के सभी देशों में काव्यशास्त्र पर विचार हुआ है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से भारतीय तथा पाश्चात्य ऐसे दो भेद किए जाते हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र का प्रारंभ सामान्यत: भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से माना जाता है। कहा जाता है कि भारत वर्ष में भरतमुनि से पहले अनेक काव्यशास्त्री हुए हैं, किंतु उनके ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। इसलिए भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' का पहला नाम आता है। अत: भरतमुनि को ही साहित्यशास्त्र की स्थापना का श्रेय दिया जाता है।

संसार को संस्कार काव्य से प्राप्त होते हैं। संसार को वाणी देने का कार्य कवि करता है। जिस कवि के पास काव्यशास्त्र का सही ज्ञान होता है वही कवि सफलता हासिल करता है। आचार्य भरतमुनि से लेकर आधुनिक काव्यशास्त्र की परंपरा को स्थापना काल, नव अन्वेषण काल, संशोधन काल, पद्यानुवाद काल और नवोत्थान कालों में विभाजित कर सकते हैं। स्पष्ट है कि भारतीय काव्यशास्त्र आज अत्यन्त उन्नत तथा विकसित अवस्था में है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के इतिहास को यूनानी परंपरा, रोमन युग, अधिकार युग, पुनर्जागरण युग, कलावाद और फ्रायड एवं युंग के प्रभाव का युग आदि भागों में विभाजित करते हैं।

डॉ. श्यामसुंदर दास लिखते हैं, ''काव्य शब्द का वही अर्थ है जो साहित्य शब्द का वास्तविक अर्थ है।'' प्राचीन भारतीय ग्रंथों में साहित्य के लिए 'वाङ्मय' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। डॉ. बाबू गुलाबराय स्पष्ट कहते हैं, ''साहित्य शब्द अपने व्यापक अर्थ में सारे वाङ्मय का द्योतक है। 'काव्य' यह शब्द कवि से प्रचलित हुआ है और अंग्रेजी शब्द 'Poetry' का अनुवाद है। 'साहित्य' शब्द अंग्रेजी Letter से फिर Literature के रूप में प्रचलित हुआ है। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'सहित्यस्य भाव : इति साहित्यम्' कहा है। साहित्य का अर्थ है- सहभाव अर्थात साथ रहना। शब्द और अर्थ का साहित्य में सहभाव होता है। मूलत: साहित्य शब्द काव्य का उत्तराधिकारी होते हुए भी आज अधिक व्यापक तथा समृद्ध एवं विकसित अर्थ का वाहक बना है।

काव्य में बुद्धि तत्त्व, कल्पना तत्त्व, भावतत्त्व और शैली तत्त्व का योगदान होता है। प्राचीन आचार्यों से लेकर अबतक के आचार्यों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार काव्य के विभिन्न रूपों का उल्लेख किया है। बारीकी से विचार करे तो हर कर्म के पीछे प्रयोजन देखने को मिलता है। काल तथा विचार धारा के अनुसार प्रयोजन संबंधी विचार भी बदलते रहते हैं। स्पष्ट है कि कोई कवि निरुद्देश्य काव्य सृजन नहीं करता।

अपने पाठ्यक्रम में साहित्य का स्वरूप, तत्त्व, प्रकार और प्रयोजनों का समावेश किया गया है। अत: हम काव्य किसे कहते हैं? उसकी परिभाषा बनाने का प्रयास किन-किन विद्वानों ने किया हैं? काव्य के विभिन्न तत्त्व कौन से हैं? काव्य के प्रकार कौन से हैं? अलग-अलग विद्वानों ने काव्य के कौन से प्रयोजन बनाए हैं? आदि प्रश्नों की दृष्टि से प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करेंगे।

1.3 विषय विवेचन :

अब हम काव्य का स्वरूप, तत्त्व, प्रकार और प्रयोजनों पर विचार करेंगे।

1.3.1 साहित्य / काव्य का स्वरूप :

वर्तमान युग में काव्य का प्रयोग पद्यात्मक रचनाओं के लिए रूढ हो गया है तथा साहित्य से सभी विधाओं का द्योतन होने लगा है। काव्यशास्त्र के अन्तर्गत काव्य और साहित्य एक दूसरे के समानार्थी समझे गए हैं। मनुष्य जीवन की तरह काव्य में भी निरंतर परिवर्तन हो रहा है। आचार्य राजशेखर ने काव्य को पन्द्रहवीं विधा माना है और बतलाया है कि काव्य चौदह विधाओं का आधार है। साहित्य शब्द अंग्रेजी के Literature के विकल्प के रूप में प्रचलित है। साहित्य शब्द का प्रचलन साहित्य के अर्थ में सातवीं आठवीं सदी से हुआ है। इसके पहले साहित्य के बदले 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता था। राजशेखर, भामह, कुंतक और रुद्रट आदि विद्वानों ने साहित्य के लिए काव्य शब्द का प्रयोग किया है। काव्य और वाङ्मय के लिए आज सिर्फ साहित्य शब्द ही स्वीकार्य है।

सही अर्थों में कवि आनंद देता है। कवि की सृष्टि नियमबद्ध नहीं होती है। मानव की पहली रचना काव्य है। काव्य में कल्पना, भावना की रसमय तथा रमणीय अभिव्यक्ति होती है। काव्य जितना व्यापक है उतना सूक्ष्म भी। प्रारंभिक काल से आज तक काव्य का स्वरूप स्पष्ट करने तथा परिभाषाओं में बाँधने के अनेक प्रयास हुए, किंतु उसका उन्नत रूप लक्षणों और परिभाषाओं की सीमा से बाहर ही दिख पडता है। मनुष्य शिक्षित हो या निरक्षर काव्य की धारा उनके कंठ से निकलती ही है। दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है, जिस देश में काव्य ही नहीं है। दुर्भाग्यवश आज हम मन की काव्य संबंधी भूख को अन्य साधनों से पूर्ण कर रहे हैं। विज्ञान तथा ज्ञान की चकाचौंध की दुनिया में काव्य के अभाव में हमारा जीवन अधूरा-सा लगता है। आज हमने बुद्धि का प्रयोग करके चंद्रलोक तथा विभिन्न ग्रहों का रहस्य खोलने में सफलता हासिल की है। रेडिओ, दूरदर्शन, इंटरनेट, अणुशक्ति का काफी मात्रा में विकास हुआ है किंतु काव्य से मानव के भीतर की प्रेम की अनुभूति समझ में आती है।

काव्य मानव जीवन की निराशा की दशा में काम आता है। काव्य आदमी को जीने की नई दिशा देता है। साहित्य समाज को उदार तथा उदात्त बना देता है। बुद्धि तथा हृदय का समन्वय काव्य में होता है। असल में सत्यं, शिवं, सुंदरम् इन तीनों की सामंजस्यपूर्ण प्रतिष्ठा ही साहित्य की सफलता की पराकाष्ठा है। विश्वव्यापी एकता की भावना का विकास करने में काव्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। वह मानव के बाह्य और आंतरिक जगत् का वर्णन करता है। हम कुछ महत्त्वपूर्ण काव्य लक्षणों के विवेचन के द्वारा काव्य का स्वरूप स्पष्ट करना चाहते हैं।

1.3.1.1 संस्कृत आचार्यों के काव्य-लक्षण :

✷ आचार्य भरतमुनि :

आचार्य भरतमुनि संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। इस दृष्टि से देखे तो काव्य का लक्षण सर्वप्रथम काव्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में लिखा है-

''मुदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनम।
जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम।
बहुरसकृतमार्गं सान्धिसन्धानयुक्तम।
स भवति शुभ काव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम्।''

अर्थात् जिसकी रचना कोमल एवं ललित पदों में की गयी हो, जिसमें गूढ-शब्द-अर्थ का अभाव हो, जो जनसाधारण के लिए सुख-बोधक हो, जिसमें युक्तियुक्त ढंग से नृत्य आदि की योजना की गयी हो, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के रस स्वीकार किए गए हो और जिसमें कथानक सन्धियों का निर्वाह किया गया हो, नाटक के प्रेक्षक के लिए वही शुभ-काव्य होता है।

नि:संदेह भरतमुनि का काव्य-विवेचन व्यापक है। यह लक्षण दृश्य काव्य की दृष्टि से लिखा गया है।

✹ आचार्य भामह :

भरतमुनि के उपरांत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में काव्यालंकार के रचयिता और अलंकार संप्रदाय के प्रवर्तक भामह का नाम आता है। उन्होंने काव्य के बारे में लिखा है -

''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।''

अर्थात शब्द और अर्थ का सहित भाव काव्य या साहित्य है।

प्रस्तुत काव्य की परिभाषा अत्यंत व्यापक है, क्योंकि इसके क्षेत्र में काव्य के अतिरिक्त शास्त्र, इतिहास और वार्तालाप आदि सभी आ जाते हैं। इसमें अतिव्याप्ति दोष के साथ-साथ काव्य के बाह्य स्वरूप का ही स्पष्टीकरण है। यह परिभाषा, उचित नहीं है।

✹ आचार्य विश्वनाथ :

'साहित्य दर्पण' के रचयिता और रस संप्रदाय के आचार्य विश्वनाथ ने काव्य की परिभाषा दी है-

''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।''

अर्थात रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

आचार्य विश्वनाथ रसवादी होने के कारण रस को प्रमुखता दी है किंतु रस की सत्ता स्वीकार कर लेने के बाद अन्य सभी तत्त्व गौण हो जाते हैं।

✹ आचार्य रुद्रट :

'काव्यालंकार' में रुद्रट ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है -

''ननु शब्दार्थौ काव्यम्।''

अर्थात वे शब्द और अर्थ के संबंध को ही काव्य मानते हैं।

प्रस्तुत परिभाषा में रुद्रट ने शब्द और अर्थ की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए चारुतापूर्ण शब्द और अर्थ के उपादान पर बल दिया है। यह परिभाषा अतिव्याप्ति दोष से युक्त है।

✹ आचार्य राजशेखर :

'काव्यमीमांसा' के रचयिता आचार्य राजशेखर साहित्य शब्द का प्रयोग 'काव्य' के अर्थ में करते हुए लिखते हैं-

''शब्दार्थयो: यथावत् सहभावेन विधा साहित्यविद्या।''

अर्थात शब्द और अर्थ की यथायोग्य संगति से जो विधा या प्रकार बनता है, वह साहित्यविद्या कहलाता है।

इस परिभाषा में सिर्फ शब्दों के चुनाव को ही महत्त्व दिया गया है। इसमें अव्याप्ति दोष होने के कारण यह परिभाषा स्वीकार्य नहीं है।

✹ आचार्य मम्मट :

आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्य प्रकाश' ग्रंथ में कविता का लक्षण इस प्रकार दिया है -

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुन: क्वापि।''

अर्थात दोष-विरहित, गुण-युक्त और कहीं कहीं अनलंकृत शब्दार्थ ही काव्य है।

मम्मट की परिभाशा में दो विशेषताएँ तो निषेधात्मक हैं और उनमें भी एक अनिश्चित। प्रस्तुत परिभाषा में प्रयुक्त 'अदोषौ' शब्द सार्थक नहीं है, क्योंकि सर्वथा निर्दोष रचना असंभव है। 'सगुण' शब्द भी काव्य की कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रकट नहीं करता, क्योंकि गुण बडा व्यापक अर्थ देनेवाला शब्द है। अत: यह लक्षण अस्पष्ट है।

✹ आचार्य पंडितराज जगन्नाथ :

आचार्य पंडितराज जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्र परंपरा के अंतिम आचार्य हैं। उन्होंने अपना काव्य लक्षण दिया है-

''रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्द : काव्यम्।''

अर्थात रमणीय अर्थ प्रतिपादन करनेवाला शब्द ही काव्य है।

शब्द में सदैव अर्थ की रमणीयता होना असंभव है। अत: कुछ विद्वान शब्द की जगह वाक्य का प्रयोग करना चाहते हैं। यह लक्षण पर्याप्त सरल और सुबोध है।

1.3.1.2 प्राचीन हिंदी आचार्यों के काव्य-लक्षण :

संस्कृत के आचार्यों की तरह प्राचीन हिंदी आचार्यों ने काव्य/साहित्य का लक्षण बतलाने का प्रयास किया है, किंतु हमें यह मानना पडेगा कि हिंदी के सभी आचार्यो पर किसी न किसी प्रकार संस्कृत आचार्यों का प्रभाव दिखायी देता है।

✹ आचार्य कुलपति मिश्र :

आचार्य कुलपति मिश्र ने 'रस रहस्य' में मम्मट तथा विश्वनाथ दोनों के काव्य-लक्षण का खंडन करते हुए मौलिक उद्भावना की है -

''जगते अद्भुत सुख सदन, शब्दरू अर्थ कवित्त।
यह लच्छन मैंने कियो, समुझि ग्रंथ बहु चित्त॥''

अर्थात अलौकिक आनंद देनेवाले शब्द और अर्थ को काव्य कहा जाता है।

जगत् से विलक्षण आनंद कैसे समझा जाय, प्रश्न यह है। अत: लक्षण अस्पष्ट है। आचार्य कुलपति मिश्र की परिभाषा पर संस्कृत के आचार्य पंडितराज जगन्नाथ का प्रभाव दिखाई पडता है।

✹ आचार्य देव :

आचार्य देव ने अपने 'काव्य-रसायन' ग्रंथ में काव्य के स्वरूप को रूपायित करते हुए लिखा है -

''सब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमय सुजस सरीर।
चलत वहै जुग छन्द गति, अलंकार गम्भीर॥''

अर्थात शब्द जीव है, अर्थ मन है, रसयुक्त सुयश शरीर है, वर्णिक-मार्मिक छंद उसकी गति है और अलंकार गति की गंभीरता के व्यंजक हैं।

महाकवि देव की धारणा विलक्षण है, जिसमें शब्द को शरीर न मानकर रस को शरीर माना गया है। गति की गम्भीरता भावों पर निर्भर करती है यह सर्वविदि्त है, किंतु देव ने अलंकारों में मानी है। अत: काव्य के स्वरूप को समझने में इससे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती।

✹ आचार्य चिंतामणि :

आचार्य चिंतामणि ने 'कविकुल-कल्पतरु' में काव्य का जो लक्षण दिया है, वह इस प्रकार है -

''सगुन अलंकारन सहित, दोषरहित जो होई।
शब्द अर्थ वारी विबुध कहत सब कोई॥''

अर्थात गुणसहित, अलंकारसहित और दोष रहित अर्थपूर्ण शब्द-रचना को कविता कहते हैं।

यह परिभाशा आचार्य मम्मट के लक्षण की अपेक्षा हेमचन्द्र के लक्षण से अधिक साम्य रखती है। हेमचन्द्र ने अलंकार को अनिवार्य माना है। चिंतामणि ने भी अलंकार की अनिवार्यता पर विशेष बल दिया है।

✹ आचार्य श्रीपति :

इनके 'काव्य-सरोज' के अनुसार -

''शब्द अर्थ बिन दोष, गुण अलंकार रसवान।
ताको काव्य बखातिए, श्रीपति परम सुजान॥''

अर्थात दोष रहित, गुण, अलंकार और रसयुक्त रचना को काव्य कहो ऐसा श्रीपति सुजानों को कहते हैं।

प्रस्तुत परिभाषा पर संस्कृत आचार्य मम्मट का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इस परिभाषा में प्रयुक्त 'बिन-दोष' शब्द निषेधात्मक है।

✹ आचार्य सोमनाथ :

आचार्य सोमनाथ ने काव्य का लक्षण देते हुए कहा है -

''सगुन पदारथ दोष विनु, पिंगल मत अविरुद्ध।
भूषण जुत कवि कर्म जो, सो कवित्त कहि बुद्ध॥''

अर्थात सगुण पद से युक्त, दोषरहित, छंदशास्त्र से युक्त और अलंकार से परिपूर्ण ऐसा जो कवि -कर्म होता है, उसे कविता कहते हैं।

सोमनाथ एक ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने काव्य की परिभाषा में छंद का समावेश किया है। प्रस्तुत परिभाषा पर मम्मट का प्रभाव है।

✹ आचार्य भिखारीदास :

आचार्य भिखारीदास ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है -

''रस कविता को अंग भूषण है, भूषण सकल।
गुण सरुप और रंग, दूषण करै कुरुपता॥''

अर्थात रस ही कविता का मूल भूषण है। रस के साथ ही भूषण भी इसके लिए आवश्यक है। कविता गुणसहित हो, उसका ढंग अच्छा हो और वह दूषण से रहित हो; क्योंकि दूषण के कारण उसे कुरूपता आती है।

प्रस्तुत परिभाषा में भिखारीदास ने अनेक काव्यतत्त्व को इकट्ठा करने का प्रयास किया हे। अत: वह काव्य-लक्षण भी असमीचीत है।

1.3.1.3 आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण :

आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण देखने योग्य हैं। जिन्हें देखकर यह स्पष्ट होता है कि इनके काव्य-लक्षण अधिकांश मात्रा में संस्कृत तथा पाश्चात्य काव्य लक्षणों से प्रभावित हैं।

✹ आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

हिंदी के मूर्धन्य समालोचक तथा निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है -

''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति साधना की लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।''

वे कविता का जन्म मुक्तावस्था में होता है ऐसा मानते हैं। स्पष्ट है कि काव्य का यह लक्षण पूर्ण तथा व्यापक नहीं है।

✹ महादेवी वर्मा :

सुश्री महादेवी वर्मा जी ने काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है -

''कविता कवि-विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में अविर्भूत होती हैं।''

यह परिभाषा सीमित है। इसमें बुद्धि तथा कल्पना तत्व की उपेक्षा की गई है।

✹ डॉ. श्यामसुंदर दास :

उन्होंने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है -

''काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनन्द व चमत्कार की सृष्टि करे।''

इस लक्षण में रस, ध्वनि और अलंकार को समाहित करने का प्रयास किया है।

✹ सुमित्रानंदन पंत :

छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत का कथन है -

''काव्य हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।''

प्रस्तुत परिभाषा में अस्पष्टता दिखाई देती है। परिपूर्ण क्षण किस वक्त को कहे, इसका स्पष्ट जवाब नहीं मिलता है।

✹ बाबू गुलाबराय :

आचार्य बाबू गुलाबराय ने लिखा है -

''कविता संसार के प्रति कवि की भाव-प्रधान किंतु शुद्ध वैयक्तिक संबंधों से युक्त मानसिक प्रतिक्रियाओं की कल्पना के ढाँचे में ढली श्रेय का प्रेम रूप उद्घाटित करनेवाली प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति है।''

प्रस्तुत परिभाषा में भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों मतों का सार हैं।

1.3.1.4 पाश्चात्य विद्वानों के काव्य-लक्षण : (अंग्रेजी काव्य-लक्षण) :

पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारतीयों के समान काव्य के सम्बंध में बहुत कुछ लिखा है। वे अन्य कलाओं के सदृश्य कविता को भी अनुकृत मानते हैं। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लक्षणों को हम सामान्यत: दो वर्गो में बाँट सकते हैं - 1) वस्तु-परक, 2) आत्म तत्वपरक। वस्तुपरक काव्य-लक्षण जो इसके बाह्य तत्त्व को दिखाने वाला है उनमें से प्लेटो, अरस्तु, ड्राइडन, जानसन, मैथ्यू आरनाल्ड हैं। आत्मपरक काव्य-लक्षण रोमांटिक कवियों तथा कवि आलोचकों ने प्रस्तुत किए हैं जिनमें वर्डस्वर्थ, कॉलरिज, शैली, ले हन्ट आदि के काव्यलक्षण उल्लेखनीय हैं।

1) एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका (Encyclopaedia Britanika) **:**

इसे अंग्रेजी विश्वकोष में लिखा है -

"Poetry - art, work of the Poet."

अर्थात कविता का कार्य कलाकाव्य है।

यह लक्षण अस्पष्ट है। पहले कवि को समझा जाय और तब उसके कार्य को काव्य कहा जाय। कवि के माध्यम से कविता की परिभाषा उचित और स्पष्ट नहीं।

2) ड्राइडन (Dryden) **:**

इनका विचार है -

"Poetry is articulate music."

अर्थात कविता सुस्पष्ट संगीत है।

यह परिभाषा सर्वत्र सत्य नहीं। संगीत, कविता का एक पक्ष है, परंतु संगीत तत्व काव्य का अनिवार्य अंग नहीं। इसके अतिरिक्त सभी कविताओं में संगीत नहीं रहता। अत: यह परिभाषा उपयुक्त नहीं। अव्याप्ति दोष से युक्त है।

3) कॉलरिज :

ये काव्य में भावनाओं की क्रमिक अभिव्यक्ति को सुंदर शब्दों द्वारा सजाने के पक्ष में हैं -

"Poetry is the best words in their best order."

अर्थात सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता है।

यहाँ प्रश्न यह है कि सर्वोत्तम शब्द कौन से हैं और उनका सर्वोत्तम क्रम क्या है? सबसे उत्तम अर्थ देने वाले शब्द स्वर्ग, सोना, पुष्प, सौंदर्य आदि उत्तम होने चाहिए। ऐसी दशा में मृत्यु, कीचड, नरक आदि शब्द बुरे होंगे और काव्य के क्षेत्र से उन्हें निकाल देना पडेगा। पर इन शब्दों और इनके पर्यायों का उत्तम काव्य में खूब व्यवहार होता है। शब्दों का कभी-कभी एक क्रम और कभी दूसरा क्रम काव्य की पंक्तियाँ बन जाता है। इसलिए यह लक्षण अस्पष्ट और भ्रामक है।

4) वर्डस्वर्थ (Wordsworth) **:**

वर्डस्वर्थ ने काव्य में कल्पना के स्थान पर भावना को महत्त्व दिया है।

"Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquillity."

अर्थात कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है, जिसका स्रोत शांति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है।

वर्डस्वर्थ की परिभाषा तथ्यपूर्ण है, क्योंकि **यह भावानुभूति और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट करती है।** इस लक्षण में भी आपत्ति उठाई जा सकती है। शांति के समय में सभी अपने मनोवेगों को स्मरण करते हैं और अपने प्रबल भावों को प्रकट भी करते हैं; क्या वह सब काव्य हो जाता है? यहाँ पर अभिव्यक्ति कला और उसके प्रभाव का उल्लेख नहीं है। हम अपने सुख-दु:खपूर्ण क्षणों का स्मरण कर हँसते हैं और रोते हैं, पर सभी का वह उल्लास और विलाप सदैव कविता नहीं बन जाता। कविता के लिए उस सहज अभिव्यक्ति में सौंदर्य, संयम और प्रभाव की आवश्यकता है; परंतु इसमें संदेह नहीं कि प्रतिभा और अभिव्यक्ति-कौशल से युक्त कवियों की काव्याभिव्यक्ति की

प्रक्रिया यहाँ पर आवश्य स्पष्ट हुई है। मनोवगों के आवेग के समय काव्य की अभिव्यक्ति नहीं होती; वरन् मनोवेग जब अनुभूति और भाव बन जाते हैं तब कवि स्मरण करके प्रबलता से उठे हुए भावोद्रेक को प्रकट करता है, जो काव्य होता है। कहा भी गया है 'भाव स्मरण रस:'। भावों का स्मृत रूप आनंददायी होता है और उनकी प्रतिभासंपन्न कवियों के द्वारा अभिव्यक्ति कविता बन जाती है।

5) शैली (Shelley) **:**

शैली ने **सरस काव्य में करूणा को आवश्यक माना है।** काव्य के लक्षण पर विचार करते हुए इन्होंने लिखा है-

"Poetry is the record of the best and happiest moment of the happiest and best mind."

अर्थात सर्वसुखी और सर्वोत्तम मनों के सर्वोत्तम और सर्वाधिक सुखपूर्ण क्षणों का लेखा कविता है।

यहाँ पर शंका यह उठती है कि सबसे सुखी और सबसे उत्तम मनों को परखने की कसौटी क्या है? दूसरे उनके सर्वोत्तम और सबसे सुखी क्षण कौनसे हैं? उनका लेखा सदैव कविता होगी, यह संदिग्ध है। सूखपूर्ण क्षणों से अधिक काव्य के बीज तो विषादपूर्ण क्षणों में उगते हैं, जैसे कि स्वयं शैली के विचार हैं (Our sweetest song are those that tell of saddest thought.) कि **हमारे सबसे मधुर गान वे हैं जिनमें विषादपूर्ण भाव व्यक्त किये जाते हैं।** अत: ऊपर की परिभाषा भावुकतापूर्ण ही है। काव्य को लेखा कहना उचित नहीं, क्योंकि इससे कल्पना और भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है तटस्थ लेखा नहीं। यदि हम सुखी क्षणों का लेखा ही काव्य मानें, तो करुणापूर्ण काव्य को कहाँ रखा जायेगा जिसके लिए भवभूति का आग्रह है - 'एको रस: करूण एवं निमित्तभेदात्'।

6) मैथ्यू आरनॉल्ड (Arnold) **:**

इन्होंने काव्य में कल्पना के स्थान पर जीवन और विचारात्मक व्याख्या को महत्त्व दिया है-

"Poetry is at bottom, a criticism of life."

अर्थात कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना है।

इस लक्षण में उत्तम काव्य की विशेषता स्पष्ट हुई है। परंतु यह कोई विशिष्ट लक्षण नहीं माना जा सकता। जीवन की समीक्षा साहित्य के और रूपों में भी हो सकती है, केवल कविता में ही नहीं, अत: यह आरनॉल्ड के निजी काव्यादर्श का संकेत करनेवाली उक्ति है, कविता की परिभाषा नहीं।

7) डॉक्टर जॉनसन (Dr. Johnson) **:**

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध लेखक डॉ. जानसन कविता को कला के रूप में स्वीकार करते हुए लिखते हैं-

"Poetry is the art of uniting pleasure with thruth by calling imagination to the help of reason."

अर्थात कविता वह कला है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्वारा सत्य को आनंद से समन्वित करती है।

इस परिभाषा में डॉक्टर जॉनसन ने काव्य का प्रधान स्वरूप स्पष्ट किया है। सत्य के प्रकाशन में आनंद का समावेश, रमणीयता और रोचकता के गुण का संकेत करता है और कल्पना का तो इस प्रकार के कार्य में प्रमुख हाथ

रहता ही है। युक्तिसंगत होना, सत्य के स्वरूप का आधार है। वास्तविकता का आभास और विश्वसनीयता, कविता के प्रभावशाली होने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। ऐसी दशा में डॉ. जॉनसन की धारणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; परंतु इसमें कविता के कलात्मक पक्ष पर अधिक जोर दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, पाश्चात्य विद्वानों में प्रधान रूप से दो वर्ग दिखाई देते हैं - एक तो वे जो कविता को जीवन से अलग करके देखना चाहते हैं, दूसरे वे जो कविता को जीवन की ही अभिव्यक्ति या आलोचना मानते हैं। अत:संक्षेप में इन विद्वानों में हर एक ने अलग-अलग तत्त्व को काव्य में महत्त्वपूर्ण माना है। वास्तव में सुंदर काव्य वही होगा जिसमें सभी का सुंदर सामंजस्य विधान होगा।

1.3.1.5 निष्कर्ष :

वस्तुत: संस्कृत, हिंदी तथा पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के अंतरंग तथा बहिरंग तत्त्वों के आधार पर काव्य की परिभाषा करने का प्रयास किया है। सभी विद्वानों में एक नये विचार तथा धारणा प्रस्तुत करने की प्रबल इच्छा दिखाई देती है। हमें यह मानना ही पडेगा की विभिन्न परिभाषाएँ दोनों का परिमार्जन करती दिखायी देती हैं। सार रूप में काव्य अथवा साहित्य की परिभाषा इन शब्दों में की जा सकती है। ''हृदय और बुद्धि का सुंदर सामंजस्य जिसमें होता है, वह काव्य होता है।''

1.3.2 काव्य / साहित्य : तत्त्व :

पाश्चात्य विद्वान विचेंस्टर ने पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में काव्य के मूल विधायक तत्त्वों का सर्वप्रथम उल्लेख किया था। भावतत्त्व, कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व आदि को विचेंस्टर ने काव्य में चार तत्त्वों की सत्ता को माना है। हडसन भी इसी बात को स्वीकारते हैं। सही अर्थो में इन तत्त्वों के कारण काव्य या साहित्य को सौंदर्य प्राप्त होता है। भावतत्त्व काव्य की आत्मा है। बुद्धि तत्त्व काव्य में सत्य का प्रकाश लाता है। सौंदर्य दृष्टि उत्पन्न करने में कल्पना तत्त्व का योगदान सराहनीय है। शैली भाषा पर निर्धारित रहती है। भावना के अनुसार शैली में परिवर्तन होता है।

1.3.2.1 भाव तत्त्व (The Element of Emotion) :

काव्य के विधाायक तत्त्वों में भाव तत्त्व सबसे अधिक प्रभाव उत्पन्न करनेवाला होता है। भाव संक्रामक होते हैं। भाव की तीव्रता अभिव्यक्ति की उद्दीपक है। भाव तत्त्व के अभाव से काव्य निष्प्राण एवं नीरस होता है। शब्द, अर्थ और कल्पना भाव को साकार रूप देते हैं। कवि की कल्पना का प्रेरक भाव है। भाव संगीतात्मकता का भी प्रेरक है। काव्य के निर्माण के मूल में कवि के हृदय का भाव ही कार्य करता है। मूलत: कवि संवेदनशील होने के कारण उनके हृदय में अनेक भाव जाग उठते हैं। इन तीव्र भावों से काव्य का जन्म होता है। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ ने भावों का योगदान स्पष्ट करते हुए लिखा है - ''काव्य प्रबल संवेदना का सहज उद्रेक है।'' भावों की सृष्टि कवि करता है, इसलिए कवि काव्य जगत् का विधाता है।

भारतीय आचार्यों ने रस का संबंध भावों से माना है। आचार्य विश्वनाथ ने काव्य में रस की प्रधानता बताते हुए लिखा - ''वाक्यं रमात्मकं काव्यमं्।'' स्पष्ट है कि भावों के बिना रस नहीं और रस के बिना काव्य नहीं। आचार्य

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने बताया है कि, ''अन्त:करण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।'' अन्त:करण की वृत्तियों का संबंध रसदशा अर्थात भावानात्मकता से है। काव्य में भाव जितने गहरे होते हैं उतना ही उसका असर गहरा होता है। काव्य में स्पष्टता, औचित्य विविधता और व्यापकता का आगमन भावों के कारण ही होता है। भाव तत्त्व साहित्य के सभी विधाओं में व्याप्त है। पाठकों के दिलो दिमाग पर भावों से युक्त काव्य गहरा असर करता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

''आजा रे कागो, चुन-चुन खायो मेरा मास।
दो नयनन मत खायो, पिया मिलन की आस।।''

इन पंक्तियों में खून से लथपथ घायल युवती अपने प्रियतम की इच्छा व्यक्त करती है इन भाव भरी पंक्तियों से कोई भी पाठक लुब्ध हुए बिना नहीं रह सकता है।

भावों को इंद्रियातीत भाव या सामान्य भाव, प्रज्ञात्मक भाव या संचारी भाव और गुणात्मक या सौंदर्य बोध से सरंबंधित भाव आदि तीन भागों में विभाजित किया जाता है। काव्य का बडा व्यापक तत्त्व भाव है। यह पाठक तथा श्रोता का भी संस्कार करता है। काव्य में सरलता आने के लिए भावों में वैविध्य का होना भी आवश्यक है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र ग्रंथ में सभी प्रकार के भाव दो प्रमुख भागों में विभाजित किए हैं - 1) स्थायी भाव, 2) संचारी भाव। गीतिकाव्य में भावात्मकता अधिक दिखाई देती है। स्पष्ट है कि भावतत्त्व में 'शिव' की रक्षा होती है।

1.3.2.2 कल्पना तत्त्व (The Element of Imagination) **:**

कल्पना शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है - सृष्टि करना, सृजन करना। काव्य में रूप या सौंदर्य सृष्टि करनेवाली शक्ति कल्पना है। अंग्रेजी में कल्पना का पर्याय Imagination है और इसका निर्माण Image शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है - मानसिक बिम्ब या चित्र। काव्य में 'सुन्दरम की प्रतिष्ठा का श्रेय कल्पना तत्त्व को ही है। यह सच है कि कल्पना के द्वारा अतीत तथा भविष्य की वस्तुओं, दृश्यों का हम साक्षात्कार कर सकते हैं। इसी तत्त्व के महत्त्व को स्वीकार करते हुए पाश्चात्य विद्वान रस्किन ने लिखा है, ''कविता कल्पना के द्वारा मनोवेगों के लिए रमणीय क्षेत्र प्रस्तुत करती हैं'' कल्पना तत्त्व अमूर्त भाव को मूर्त रूप प्रदान करता है। शून्य या अज्ञात वस्तु को कवि कल्पना के सहारे आकार देता है। आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने कल्पना तत्त्व के बारे में बिल्कुल ठीक लिखा है, ''जो वस्तु हमसे अलग है, हम से दूर प्रतीत है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामिप्य का अनुभव करना उपासना है। साहित्यवाले इसे भावना कहते हैं और आजकल के लोग कल्पना।''

कल्पना तीन प्रकार की मानी जाती है - उत्पादक, संयोजक और अवबोधक। जयशंकर प्रसाद जी ने कामायनी में मनोभावों का मानवीकरण किया है। अचेतन को सचेतन करने की बडी शक्ति कवि में कल्पना से मिलती है। नये संसार की रचना कवि अपने कल्पना के बलबुते पर ही करता है। नवीनता तथा रोचकता का आगमन काव्य में कल्पना के कारण ही होता है। हाँ, यह सही कहा गया है कि, जो न देखे रवि, वह देखे कवि। साहित्य लोचन ग्रंथ में डॉ. श्यामसुंदरदास लिखते हैं - ''विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है।''

कल्पना तत्त्व का महत्त्वपूर्ण काम मानव जीवन के अनेक दृश्यों को सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। विचारों को

उत्तेजित करने की शक्ति कल्पना में होती है। असल कल्पना का सामर्थ्य ही कवि की प्रतिभा है। कविवर बिहारी ने कल्पना के सहारे 'प्रिय से मिलने के लिए विरहिणी नायिका की आकुल व्याकुल स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है-

''इत तै उत तैं इतै, छिनु न कहूँ ठहराति।
रूख न परति, चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति।''

कवि की सृजन शक्ति कल्पना होती है और इसी के बल पर वह एक नई तथा चमत्कारिक दुनिया का पुनर्निर्माण कर सकता है। कवि साधारण घटनाओं को भी कल्पना का सहारा लेकर असाधारण बना देता है। कल्पना में रसात्मकता की प्रतिष्ठा होना महत्त्वपूर्ण होता है।

1.3.2.3 **बुद्धि तत्त्व** (The Element of Intellect) :

काव्य में भाव और कल्पना के बाद बुद्धि तत्त्व की महता है। इस तत्त्व में विचार की प्रधानता होती है। कवि अपनी रचना विशिष्ट मकसद हेतु लिखता है। वह उसके द्वारा अपने पाठकों को एक विशिष्ट संदेश देना चाहता है। इस विशिष्ट संदेश तथा मकसद के प्रतिपादन के हेतु वह काव्य के माध्यम से अपने विशिष्ट विचारों की अभिव्यक्ति करता है। ये विचार ही काव्य में बुद्धि तत्त्व कहलाते हैं। बुद्धि तत्त्व के कारण काव्य सुसंगत तथा प्रभावशाली बन जाता है। कल्पना और भाव को सत्य बनाने का काम बुद्धि तत्त्व का होता है। यह भी सही है कि काव्य में बुद्धि तत्त्व विशुद्ध रूप में नहीं होता। काव्य में बुद्धि तत्त्व के कारण औचित्य का आगमन होता है। यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि बुद्धि तत्त्व से हीन कोई भी वर्णन हास्यास्पद हो जाता है। संत तुलसीदास के शब्द-प्रयोगों के औचित्य और विचारपूर्णता पर न जाने कितनी व्याख्याएँ हुई हैं और बराबर हो रही हैं। बुद्धि तत्त्व साहित्यकार को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है। भावना को सुचारू रूप से प्रस्तुत करना है तो बुद्धि तत्त्व महत्त्वपूर्ण है।

बुद्धि को विचार तत्त्व भी कहा जाता है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने विचार या बुद्धि तत्त्व को काव्य के महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकारा है। यह नकारा नहीं जा सकता है कि काव्य में भाव की अधिकता होती है किंतु बुद्धि का भी काव्य में अपना अलग महत्त्व होता है। निबंध में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता होती है। केवल आज के युग में ही नहीं प्राचीन काल से भारत और पाश्चात्य देशों में बुद्धि तत्त्व की चर्चा होती आयी है। काव्य में योग्य-अयोग्य का विवेक बुद्धि ही रखती है।

यह हमें मानना पडेगा कि काव्य का साहित्य में सिर्फ आनंद तथा शुद्ध मनोरंजन नहीं होता है, साथही साथ बुद्धि की भी प्रधानता होती है। बुद्धि-तत्त्व एक ऐसी बागडौर है, जो असंतुलित दौड को रोक देती है। कहा जाता है कि कहानी, नाटक, उपन्यास और निबंध में इस तत्त्व का होना शरीर में प्राण जैसा है।

1.3.2.4 **शैली तत्त्व** (The Element of Styple or Expression) :

भाव, कल्पना और बुद्धि तत्त्व साहित्य के भाव-पक्ष से संबंधित हैं, तो शैली तत्त्व का संबंध साहित्य के कलापक्ष से है। इसे काव्य का शरीर भी कहा जाता है। पाश्चात्य साहित्य में शैली तत्त्व को विशेष महत्त्व दिया है। अंग्रेजी में कहा जाता है 'Style is the man himself.' इसी प्रकार प्रत्येक कवि की अपनी एक विशिष्ट शैली होती

है। शैली के आधार पर ही कवि की तीन अवस्थाएँ निर्धारित की गई हैं। 1) प्रारंभिक, 2) प्रयोग, 3) प्रौढ। शैली के आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है। काव्य को सुंदर, रोचक और आकर्षक बनाने में शैली का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में शैली का समानार्थक शब्द रीति है। आचार्य वामन विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं। काव्य में बुद्धि तत्त्व से सत्य और शिव की रक्षा होती है और कल्पना, भाव तथा शैली तत्त्व से सुन्दरम का निर्माण होता है।

सरस शैली, ललित शैली, क्लिष्ट शैली, मधुर शैली, उदात्त शैली और हास्यव्यंग्य शैली आदि वर्तमान युग में शैली के प्रमुख प्रकार माने जाते हैं।

1.3.2.5 निष्कर्ष :

कुल मिलाकर संक्षेप में हम इतना ही कह सकते हैं कि भाव तत्त्व, कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व के संतुलित और समन्वित रूप से ही साहित्य की निर्मिति होती है। यह सच है कि किसी एक तत्त्व की उपेक्षा या किसी एक का आधिक्य काव्य के स्वरूप में बिगडाव कर सकता है।

1.3.3 काव्य : प्रयोजन :

बिना उद्देश्य से कोई कृति नहीं लिखी जाती है। मानव जीवन के सभी क्रिया-कलाप बिना उद्देश्य से नहीं होते हैं। काव्य-प्रणयन में कवि के जो उद्देश्य रहते हैं, वे ही काव्य-प्रयोजन कहलाते हैं। असल में साहित्य की चर्चा प्रयोजन के संदर्भ में करना सर्वथा उपयुक्त है। प्राचीन काल से पाश्चात्य तथा भारतीय साहित्य में काव्य के प्रयोजन को लेकर विशद विचार व्यक्त किए जाते रहे हैं। संस्कृत काल से ही काव्य के प्रयोजन या उद्देश्यों पर विचार होता आ रहा है। इसलिए काव्य के प्रयोजनों को संस्कृत आचार्यों के काव्य प्रयोजन, हिंदी आचार्यों के काव्य प्रयोजन और पाश्चात्य आचार्यों के काव्य प्रयोजन आदि तीन वर्गों में बांटा जा सकता है।

1.3.3.1 संस्कृत आचार्य : काव्य-प्रयोजन :

✹ आचार्य भरतमुनि :

सर्वप्रथम भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में नाटक के आधार पर काव्य-प्रयोजन का उल्लेख मिलता है। भरतमुनि के काल में नाटक और काव्य में भेद नहीं माना जाता था। स्पष्ट है कि वे प्रयोजन काव्य के लिए भी माने जाते हैं। उन्होंने लोकहित साधन को महत्त्व दिया है।

''धर्म्यं यशस्यमायुष्य हितं बुद्धिविवर्द्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद भविष्यतिं।।''

अर्थात भरतमुनि के अनुसार धर्म, यश, आयु, हितोपदेश, जनहित आदि नाट्य के प्रयोजन हैं।

✹ आर्चा वामन :

वामन के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं -

''काव्यं सद्दृष्टादृष्टार्थ प्रीतिकीर्ति हेतुत्त्वात।''

वामन ने काव्य के दृष्ट एवं अदृष्ट दो ही प्रयोजन बतलाए हैं, जिन्हें प्रीति तथा कीर्ति नाम से जाना जाता है।

✹ आचार्य भामह :

अलंकारवादी भामह ने काव्य के एक साथ अनेक प्रयोजन स्वीकार किये हैं -

''धर्मार्थिकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं क्लासु च।
करोति प्रीतिं कीर्तिं च साधुकाव्य निबन्धम॥''

अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कीर्ति और 'आनंद की उपलब्धि ही काव्य का प्रयोजन है। साथ ही कलाओं में कुशलता, कीर्ति और प्रीति भी इसके प्रयोजन है।

✹ आचार्य मम्मट :

आचार्य मम्मट ने काव्य का प्रयोजन बताते हुए पूर्ववती आचार्यों का अनुसरण किया है। साथ ही साथ अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है। आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में 6 प्रयोजनों की विशद चर्चा की है -

''काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे। शिवेतरक्षतये।
सद्य: परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे॥''

अर्थात काव्य का प्रयोजन यशप्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अनिष्ट निवारण, अलौकिक आनंदानुभूति और कांतासम्मित उपदेश आदि है। मम्मट द्वारा उल्लेखित सर्वाधिक मान्य काव्य - प्रयोजनों पर संक्षेप में चर्चा करना आवश्यक है -

1) यश :

अधिकांश कवियों की रचनाएँ यश-कामना से लिखी जाती हैं। यश कवि की महत्त्वपूर्ण कामना है। मिल्टन भी यह स्वीकार करते हैं कि यश मानव की अंतिम और उदात्ततम कामना है। महाकवि कालिदास कवि कर्म जीवन में यश प्राप्ति की आकांक्षा रखता है, ऐसा माना जाता है। भर्तृहरी के मतानुसार कवि का भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है, किंतु जरामरण से रहित यश-शरीर अमर रहता है।

''जयन्ति ते सुकृतिनों रससिद्धा : कवीश्वरा:।
नास्ति येणां यश: काये जरामरणज भयम॥''

स्वपक्ष और पर पक्ष आदि यश प्रयोजन के महत्त्वपूर्ण दो पक्ष हो सकते हैं। भवभूति और भास आदि कवियों ने काव्य रचना करके अपने यश का विस्तार किया है रीतिकाल के कवियों ने काव्य की सृष्टि का प्रयोजन अपने आश्रयदाताओं का गुणगान करना माना था।

2) अर्थ :

आधुनिक काल में ही नहीं प्राचीन काल में भी यह एक प्रधान प्रयोजन रहा है। लगभग सभी संस्कृत तथा हिंदी आचार्यों ने अर्थ को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। भूखे भजन न होय गोपाला की उक्ति सभी के लिए लागू पडती है।

कवि इससे कैसे बच सकता है। रीतिकाल के कवि अपनी रचनाओं के द्वारा आश्रय दाताओं की प्रशंसा करते थे और धन प्राप्त करते थे। रीतिकाल में अर्थप्राप्त करना काव्य का मुख्य प्रयोजन था। आज भी किसी राजनीतिक दल प्रचार अपने काव्य द्वारा करता है। अफसोस की बात यह है कि अर्थ के बंधन में बंध साहित्यकार स्वतंत्र काव्य की रचना नहीं कर सकता है। आत्मा का हनन करके लिखा हुआ साहित्य मन को समाधान दे नहीं सकता है। कालजयी रचना बनना असंभव ही होगा।

जाहिर है कि कवि धावक ने 'रत्नावली' नाटिका की रचना कर अर्थ प्राप्ति की थी। बिहारी ने राजा जयसिंह से एक-एक दोहे के लिए एक एक अशर्फी ली थी। कहा जाता है कि अंग्रजी उपन्यासकार वाल्टर स्कॉटने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास की रचना की थी। उद्भट आदि आचार्य कवियों को प्रतिदिन लक्ष स्वर्ण मुद्राएँ मिला करती थीं। गौरव की बात है कि तुलसीदास और कुंभनदास आदि संत कवियों ने धन को ठुकराकर आदर्श स्थापित किया है।

3) व्यवहार ज्ञान :

मम्मट ने व्यवहार-ज्ञान की शिक्षा को भी काव्य का एक प्रयोजन माना है। काव्य सृजन से कवि और पाठक दोनों को लाभ होता है। वेद, शास्त्र या साहित्यिक विधाओं को पढकर एक वर्ग दूसरे वर्ग के व्यवहार को जानता है। गीत, संगीत, परंपरा, कला, व्यवहार, संस्कृति, शिक्षा, खेल, विज्ञान का ज्ञान भी साहित्य पढकर हो सकता है। सही गलत का ज्ञान भी समझता है।

बिहारी, रहीम, गिरधर और महाकवि गोस्वामी तुलसीदास आदि कवियों ने आदर्श व्यवहार की शिक्षा दी है।

4) शिवेतरक्षतये :

शिवेतरक्षतये का अर्थ है अनिष्ट निवारण। इस प्रयोजन को संस्कृत, हिंदी आचार्यों ने मान्यता दी है। वैयक्तिक अनिष्ट निवारण के साथ साथ सामाजिक अनिष्ट निवारण हेतु भी काव्य लिखा जाता है। भक्तिकालीन कवि तुलसीदास के जीवन में बाहु की पीडा थी। अपनी बाहु की पीडा को समाप्त करने के लिए हनुमान की स्तुति में 'हनुमान बाहुक' काव्य ग्रंथ लिखा। पद्माकर कृत 'गंगा लहरी' की चर्चा भी इसी क्रम में की जा सकती है। मयूर कवि ने सूर्य से कोढ निवारण की प्रार्थना करते हुए 'सुर्यशतक' की रचना की। 'कुरुक्षेत्र' में रामधारी सिंह दिनकरजी ने शिवभावना की ही प्रतिष्ठापना की है। भीषण संहार के उपरान्त प्राप्त हुयी विजयश्री को दिनकर जी ने युधिष्ठिर के द्वारा पूर्णरुपेण तिरस्कृत कराया है। सामाजिक अनिष्ट निवारण से देशहित तथा समाजहित होता है। इसमें प्राचीन काल से आजतक की उपदेशात्मक, नीतियुक्त और राष्ट्रीय भावना का वर्णन होता है।

5) सद्यः परिनिर्वृत्तये :

सद्य का अर्थ है तुरन्त और परिनिर्वृत्तये का अर्थ है आनंद देना। रस रूपी आनंद मिलना काव्य का प्रयोजन है। विशेष बात है कि यह आनंद कवि तथा पाठक दोनों को मिलता है। साहित्य में यह प्रयोजन किसी न किसी रूप में आजतक चला आ रहा है। रस रूपी आनंद जीवन की वेदना तथा विषमता को हटाकर शांति के मनोराज्य की स्थापना करता है, उसे ही 'ब्रह्मास्वाद सहोदर' कहा जाता है।

6) कान्तासम्मित उपदेश :

कान्तासम्मित अर्थात प्रिया द्वारा मधुर शैली में कही गई बात या भेजा गया संदेश। आचार्य मम्मट का कहना है, कि उपदेश मधुर शैली में या मधुर भाषा में होना चाहिए। प्रिया के मधुर शब्दों का असर यथाशीघ्र होता है। प्रभु सम्मत, सहृदय सम्मत और कान्ता सम्मत आदि तीन प्रकार के वचनों का शास्त्र में वर्णन है। साहित्य एक ऐसा माध्यम है जो श्रोता या पाठक पर अपना प्रभाव डाल सकता है। सुंदर, कोमल और सरस भाषा साहित्य को रोचक बनाती है। कहा जाता है कि केशव के एक छंद ने बीरबल को प्रसन्न कर राजा इंद्रजीत सिंह पर किया गया जुर्माना पूर्णरुपेण माफ किया था। रीतिकाल के कवि बिहारी ने राजा जयसिंह को दोहा लिखकर भेजा था। बिहारी के इस एक दोहे ने राजा जयसिंह का जीवन बदल दिया था। बिहारी के दोहे का प्रभाव सर्वविदित है। यह दोहा इस प्रकार है -

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहीं विकास यहि काल।
अली कली ही सो बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।''

1.3.3.2 प्राचीन हिंदी आचार्य : काव्य प्रयोजन :

हिंदी कवियों ने अथवा हिंदी काव्याचार्यों ने अधिक मात्रा में संस्कृत के आचार्यों का ही अनुकरण किया है। हिंदी काव्यशास्त्र की परंपरा रीतिकाल से मानी जाती है।

✹ गोस्वामी तुलसीदास (स्वान्तः सुख) :

महाकवि तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना 'स्वान्तः सुख' के लिए की है। महात्मा तुलसीदास ने लिखा है -

''कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सब कहं हित होई॥''

अर्थात कीर्ति, कविता और ऐश्वर्य-वैभव वही श्रेष्ठ है जो गंगा नदी के समान सब का हित करनेवाला हो। भावार्थ यह है कि तुलसीदास जी ने गंगा की पवित्रता तथा उपकारी भावना से जोडकर लोक-मंगल की स्थापना करना ही काव्य का प्रयोजन सिद्ध किया है।

✹ आचार्य कुलपति :

रीतिकालीन आचार्य कुलपति के शब्दों मं काव्य प्रयोजन इस प्रकार है -

''जस सम्पत्ति आनन्द अति दुरितन डारै खोई।
होत कवित ते चतुरई जगत राम बस होई॥''

अर्थात कुलपति के मतानुसार यश, धन, आनंद, अनिष्ट निवारण और व्यवहारज्ञान काव्य के प्रयोजन हैं।

1.3.4.3 आधुनिक हिंदी विद्वान : काव्य प्रयोजन :

हिंदी साहित्य में आधुनिक कवियों, आचार्यों तथा आलोचकों ने काव्य प्रयोजन पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इनके काव्य प्रयोजनों पर संस्कृत आचार्यों का प्रभाव है।

1) महावीर प्रसाद द्विवेदी : ज्ञान का विस्तार और मनोरंजन ही साहित्य का उद्देश्य है।

2) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त :

''केवल मनोरंजन कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।''

1.3.3.4 पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य प्रयोजन :

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में साहित्य और आलोचना का जो विवेचन-विश्लेषण हुआ है उसका आधार प्रयोजन ही रहा है। भारतीय विचारकों के मतानुसार काव्य को ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है, किंतु पाश्चात्य मान्यता के अनुसार काव्य का संबंध कभी आत्मा से जोडा है तो कभी समाज से। परिणाम स्वरूप पाश्चात्य काव्यशास्त्र के साथ साथ प्रयोजन संबंधी वाद-विवाद देखने को मिलते हैं।

पाश्चात्य विचारकों ने काव्य को कला के अंतर्गत मानकर कला के प्रयोजन की चर्चा की है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य के निम्नलिखित मुख्य प्रयोजन बताए गए हैं -

1) कला कला के लिए।
2) कला जीवन के लिए।
3) कला जीवन में प्रवेश के लिए।
4) कला जीवन से पलायन के लिए।
5) कला मनोरंजन के लिए।
6) कला आनंद के लिए।
7) कला आत्मानुभूति के लिए।
8) कला सेवा के लिए।
9) कला विनोद के लिए।
10) कला सृजन की आवश्यकता पूर्ति के लिए।

इस समस्त वादों में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण वादों की चर्चा करना हम उचित मानते हैं।

✹ कला कला के लिए :

पाश्चात्य विद्वानों में सर्वाधिक प्रचलित मत है 'कला कला के लिए' इस मत के प्रमुख समर्थक आस्कर वाईल्ड, ए. सी. ब्रेडले और स्पिनगर्त आदि हैं। प्रमुख प्रचारक ब्रेडले का कहना है कि काव्य स्वयं तो अपना उद्देश्य है। काव्य का उद्देश्य न तो किसी आदर्श सिद्धान्त की स्थापना करना है और न उपदेश देना। काव्य के बाद साहित्यकार का जो आनंद प्राप्त होता है वही उसका उद्देश्य है। कवि या कलाकार का मुख्य उद्देश्य काव्य या कला की रचना करता है। अत: उनकी दृष्टि से कला कला के लिए ही है और किसी प्रयोजन के लिए नहीं है।

इन विचारकों के अनुसार कवि या कलाकार को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की है। कला कला के लिए यह मत मानते हुए भी पाठक के विचारों से दूसरे प्रयोजन अपने आप आ जाते हैं। जब पाठक किसी भी साहित्य को पढता है तो उसे संतोष होना स्वाभाविक है। यह कहना भी गैर नहीं होगा कि पाठक को कोई प्रेरणा प्राप्त हो सकती है, कोई शिक्षा मिल सकती है तथा दु:खमय जीवन सुखमय हो सकता है। ऐसी स्थिति में जिसे कवि ने सिर्फ कला के दृष्टिकोन से रचा, वही पाठक या श्रोता के लिए अनेक प्रयोजनों से युक्त हो जाती है।

स्पिनगर्त के मतानुसार कला को नीति की कसौटी पर कसना तक अंध परंपरा है। वे कलावादी नीति को धर्म

का विषय मानते हैं, कला का नहीं। कला का उद्देश्य वे अभिव्यक्ति मानते हैं। उपयोगिता के आधार पर कला को कसना गलत है। स्पिनगर्न मानते हैं, कला का उद्देश्य सौंदर्य सृष्टि करना ही होता है।

इस संबंध में सोचनीय बात है कि कला को कला का प्रमुख प्रयोजन माना जा सकता है, किंतु कला को कला का एक मात्र प्रयोजन मानने में कुछ आपत्ति हो सकती है। सौंदर्य के नाम पर समाज में व्याप्त विभिन्न प्रवृत्तियों की ओर ध्यान न देना गलत साबित हो सकता है। अत: कला कला के लिए सिद्धांत अपूर्ण लगता है।

✹ कला जीवन के लिए :

कला कला के लिए के विपरीत पाश्चात्य देशों में दूसरा मत प्रचलित है कि कला जीवन के लिए है। कला को सिर्फ कला के लिए ही मानना मानव जीवन से अलग करना है। कला मानव जीवन से जुडकर ही सार्थक होती है। शुरू से अंत तक काव्य और कला में मानव जीवन की झाँकी रहती है। सुंदर, स्वस्थ तथा उदात दृष्टिकोन काव्य के माध्यम से जीवन में आता है। कलाओं के बिना जीवन निस्सार है।

'कला जीवन के लिए' यह मत काफी प्रसिद्ध है। साहित्यिक मत के रूप में इसका प्रचार पाश्चात्य देशों में हुआ किंतु इस मत को सही प्रतिष्ठा भारत वर्ष में ही रही है। सॉक्रेटीस, प्लूटो, रस्कीन, टॉल्सटाय और मैथ्यू आरनॉल्ड आदि विद्वान इस पक्ष के समर्थक हैं। काव्य जब नैतिक भावनाओं की उपेक्षा करता है, तब जीवन की ही उपेक्षा करता है। रस्कीन के शब्दों में, ''हमारे लिए वही काव्य ग्राह्य हो सकता है, जिसमें मनुष्य का अधिक से अधिक हित विहित है।'' प्लेटो ने बिलकुल ठिक लिखा है, ''समाज के नैतिक विकास का भार कवियों पर होता है।'' सॉक्रेटिस तो वस्तु की उपयोगिता को ही उसका सौंदर्य मानता था। मैथ्यू आरनॉल्ड पाश्चात्य विद्वान ने काव्य कला को जीवन की आलोचना (Poetry is at bottom a criticism of life) कहकर 'कला जीवन के लिए' मत का ही समर्थन किया है।

✹ कला जीवन के पलयान के लिए :

वास्तविक जीवन से उबकर हम अधिक आकर्षक तथा सुंदर जीवन का दर्शन करने के लिए काव्य का सहारा लेते है। काव्य मनुष्य को कल्पना लोक में पहुँचा देता है। फल स्वरूप काव्य जीवन से पलयान की बजाय यदि उसे शांति के लिए कहा जाए तो अधिक समीचीन होगा ।

✹ कला आनंद के लिए :

यह मत लगभग सर्वमान्य है। होमर से लेकर आधुनिक विचारकों तक के लोगों ने कला के उद्देश्य को आनंद माना है। काव्य को इसी आनंददायी शक्ति के कारण 'ब्रह्मानंद सदोहर' की संज्ञा दी गयी है ज्यों उचित है। 'कला आनंद के लिए' इस मत को स्थापित करनेवालों में शिलर और शैले का नाम प्रमुख है। शिलर के अनुसार, ''आनंद समस्त कलाओं का लक्ष्य है। क्योंकि मानव-सुख से अधिक उदात्त और गंभीर अन्य कोई समस्या नहीं''

✹ कला सृजन की आवश्यकता पूर्ति के लिए :

काव्य रचना एक सृजनात्मक आवश्यकता है। जब काव्य का सृजन कवि के लिए मजबूरी बन जाता है तब सारे बंध को तोडकर वह लिखता है। यह तो एक स्वयंसिद्ध प्रयोजन है।

1.3.3.5 निष्कर्ष :

उपर्युक्त काव्य प्रयोजन का विवेचन करने के पश्चात्य हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्य लिखते वक्त साहित्यकार के सम्मुख विशिष्ट प्रयोजन निश्चित होता है, जिसकी पूर्ति वह साहित्य के माध्यम से करता है। यह सच है कि सभी विद्वानों ने साहित्य को उच्च-कोटि की कला स्वीकार की है किंतु प्रयोजन की दृष्टि से उनमे मतभिन्नता पायी जाती है। विशेष बात यह है कि अपने देशकाल, युग-प्रवृत्तियों, रूचियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप प्रयोजन भी बदलता रहता है। हमें यह मानना पडेगा कि केवल एक प्रयोजन से काव्य का सही स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है। आज जितने काव्य प्रयोजन हैं वे एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं, बल्कि पूरक हैं।

1.3.4 काव्य / साहित्य के प्रकार :

काव्य प्रकारों को निम्नलिखित तालिका के आधार पर समझा जा सकता है।

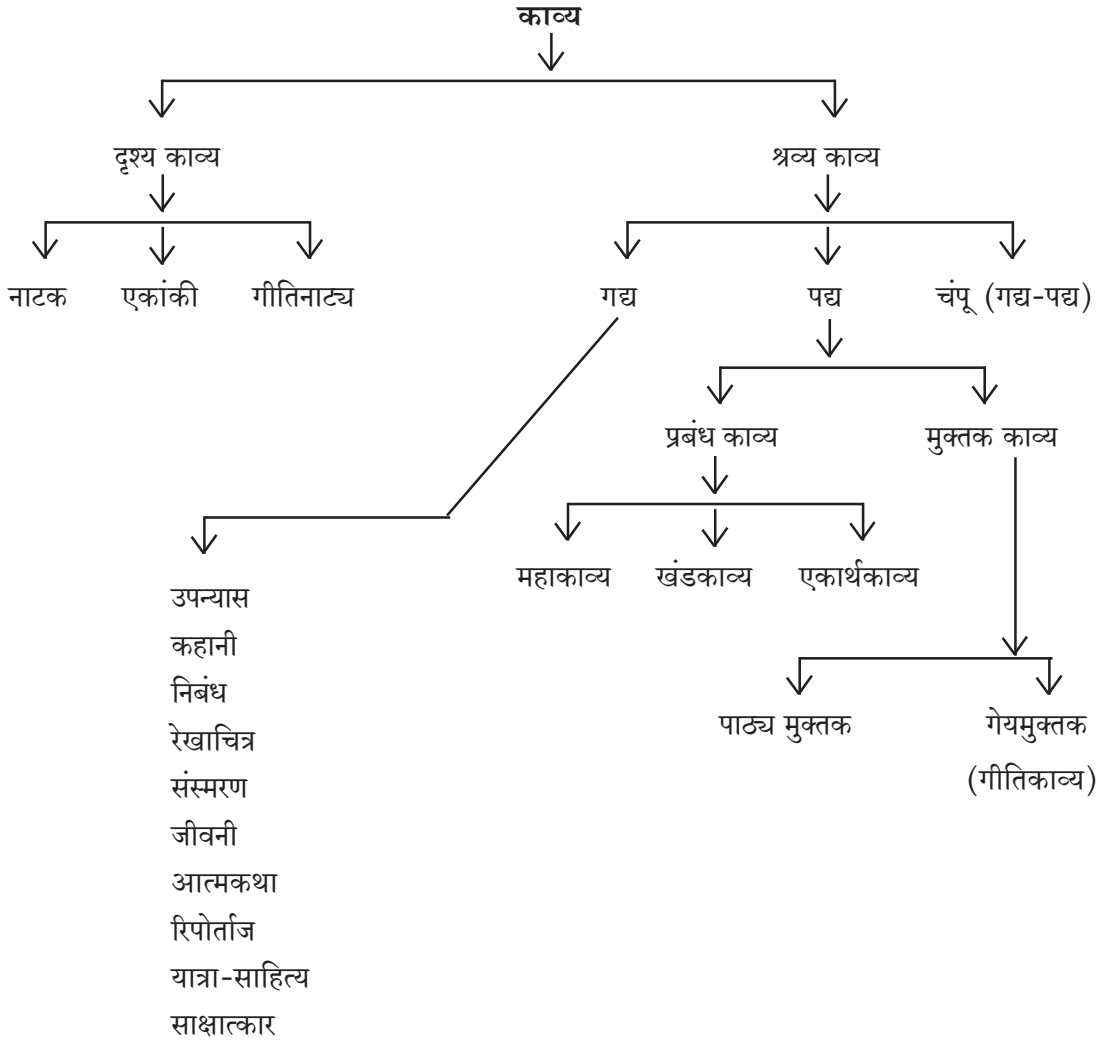

1.3.4.1 दृश्य काव्य :

जिस काव्य का आनंद मंचपर देखकर लिया जाए, वह दृश्य काव्य कहलाता है। काव्य के वर्ण्य विषय को अभिनय द्‌वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है, सामाजिक उसे देखकर आनन्दित हो उठता है। बदलते काल में दृश्य काव्य कहना उचित नहीं होगा, क्योंकि नाटक, एकांकी आदि को सुनकर भी आनंद मिलता है। आज इसे दृक-श्रव्य कहा जा सकता है। सही अर्थों में अभिनय मंच पर देखकर ही जनसाधारण आनंद ले सकता है। नाटक, एकांकी और गीतिनाट्य आदि रूप दृश्य काव्य के अंतर्गत आते हैं।

1.3.4.1.1 नाटक : रंजनात्मक विधाओं में नाटक का स्थान महत्त्वपूर्ण है। नाटक रूपक का सबसे अधिक प्रसिद्‌ध भेद है। प्रभावकरिता की दृष्टि से नाटक का स्थान सर्वोपरि है। संस्कृत आचार्यों ने नाटकों को भी काव्य के अंतर्गत स्थान दिया है। इसके लिए एक उक्ति ही काफी है -

'काव्येषु नाटक रम्यम तत्र रम्या शकुन्तला।'

अर्थात काव्यों में नाटक रमणीय है और नाटकों में शकुन्तला।

संस्कृत के नाटकों में तीन तीन पद्योंवाले वार्तालाप होते थे। रीतिकाल और आधुनिक काल के प्रारंभ में जो नाटक लिखे गये, वे पूर्णत: पद्यात्मक थे अथवा संवादों में गद्य के साथ पद्यों को भी स्थान दिया जाता था। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में गीतों की अधिकता स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। अभिनय नाटक का अनिवार्य अंग है तो संवाद नाटक की आत्मा है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार वार्तालाप, संगीत, नृत्य, वेशभूषा, कथावस्तु और अभिनय समन्वित करने पर जो रूप बनता है, उसे नाटक कहा जाता है। कथानक, पात्र तथा चरित्र, रस, उद्देश्य, अभिनय आदि भारतीय मतानुसार नाटक के पाँच तत्त्व हैं तो कथावस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद, देशकाल वातावरण, उद्देश्य, भाषाशैली, अभिनय आदि पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के सात तत्त्व माने हैं।

1.3.4.1.2 एकांकी : जो नाटक एक अंक में समाप्त होता है उसे एकांकी कहा जाता है। अंग्रेजी साहित्य में एकांकी को 'One Act Play' कहा है। एकांकी मानव का रंजन करती है। एक ही घटना, प्रसंग और विचार को प्रस्तुत करने का कार्य एकांकी करती है। एकांकी नाटक का सुनिश्चित और सुकल्पित एक लक्ष्य होता है। संघर्ष एकांकी का प्राण है। क्रियाशीलता और गतिशीलता एकांकियों की प्रमुख विशेषता है। उसमें संकलनत्रय पालन होना आवश्यक है। एकांकी के अंत में रहस्य उद्‌घाटन होना जरूरी होता है। कथानक, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, भाषाशैली और उद्देश्य आदि एकांकी के तत्त्व माने जाते हैं। अभिनेयता तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। एकांकी में अनावश्यक अंग की उपेक्षा होती है।

1.3.4.1.3 गीतिनाट्य : नाटक जब गीतों के द्‌वारा प्रस्तुत किया जाता है, तब उसे गीतिनाट्य कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे पोयटिक ड्रामा कहते है। अंग्रेजी साहित्य में इसका विशेष महत्त्व है। गीत तथा नृत्य के आधार पर गीतिनाट्य का विकास होता है। गीतिनाट्य की भाषा पद्यात्मक होती है। स्वाभाविक है कि वार्तालाप काव्य में चलता है। डॉ नगेन्द्र का कथन गीतिनाट्य के संबंध में उल्लेखनीय है, उनका कहना है कि 'इसका प्राणतत्त्व है भावना

अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है कविता।' गेयता तथा नाटकत्व होने के कारण गीतिनाट्य प्रभावशाली बन जाता है। गीतिनाट्य में तुकान्त, अनुकान्त और मुक्त छंदों का प्रयोग होता है। हिंदी नाटकों में गीतों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। काव्यत्व के साथ साथ वैयक्तिकता, भावातिरेकता,चित्रोपमता नाटकीयता और अभिनयेता आदि महत्त्वपूर्ण विशेषता गीतिनाट्य की है।

1.3.4.2 श्रव्य काव्य :

जिस काव्य का आनन्द सुनकर या पढकर लिया जाता है उसे श्रव्य काव्य कहा जाता है। श्रव्यकाव्य के शैली के आधार पर तीन भेद किये गये हैं - गद्य, पद्य और चंपू।

1.3.4.2.1 गद्य :

गद्य का सही विकास आधुनिक काल में हुआ है। आधुनिक काल को गद्यकाल के नाम से पुकारा जाता है। उपन्यास, कहानी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, यात्रावृत्तांत और साक्षात्कार गद्य साहित्य के प्रकार हैं।

1.3.4.2.1.1 उपन्यास : उपन्यास में मानव जीवन का चित्रण होता है और उपन्यास केवल काल्पनिक कथा नहीं है, उसका आधार यथार्थ है। सभी गद्य विधाओं में उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय, आकर्षक एवं सजीव विधा है। उपन्यास सम्राट स्वर्गीय मुन्शी प्रेमचंद ने अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किए हैं, ''मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।'' उपन्यास में सर्वाधिक महत्त्व कथावस्तु का होता है। पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार वर्ण्यविषय को विकसित करता है। संक्षिप्त संवाद रोचकता निर्माण करते हैं। घटना की सजीवता दिखाने के लिए उपन्यास में वातावरण महत्त्वपूर्ण होता है। उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा शैली होती है। आजकल लघु उपन्यास अधिक मात्रा में लिखे जा रहे हैं। लघु उपन्यास कम समय में अधिक मनोरंजन करता है।

1.3.4.2.1.2 कहानी : आधुनिक युग में कहानी साहित्य का बहुत विकास हुआ है। कहानी का विकास मनुष्य की भाषा के साथ-साथ माना जा सकता है। एक काल में कहानी विशेष तथा लोकप्रिय व्यक्तित्व को लेकर चली थी, किंतु आज के काल में कहानी का नायक आम और उपेक्षित जन है। यह कहना गैर नहीं होगा कि कहानी के स्वरूप में और वर्ण्यविषय में जितनी विविधता आयी है, उतनी और किसी साहित्यिक कृति के स्वरूप में नहीं। गौरव की बात है कि मनुष्य कितना भी व्यस्त हो कहानी पढने के लिए लालायित होता है। कहानी ही 'आख्यायिका', गल्प, कथा आदि नामों से जानी जाती है। कहानी में कल्पना, नाटकीयता, सरलता, स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता, स्पष्टता और प्रभावकारिता गुण विद्यमान होते हैं।

1.3.4.2.1.3 निबंध : निबंध गद्य साहित्य की सर्वोत्कृष्ट विधा है। निबंध का शाब्दिक अर्थ बांधना है। यह बाँधना भाव तथा विचार का है। निबंध का वर्तमान रूप बहुत कुछ पाश्चात्य है। अंग्रेजी में निबंध का पर्याय Essay शब्द माना जाता है। आधुनिक निबंध के जन्मदाता मौन्तेय को माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंध के बारे

में कहा है, ''यदि गद्य कवियों की कसौटी है, तो निबंध गद्य की कसौटी हैं। वर्ण्यविषय, व्यक्तित्त्व, भाषाशैली और उद्देश्य निबंध के प्रमुख तत्त्व हैं। निबंध के लिए विषय का कोई बंधन नहीं होता।

1.3.4.2.1.4 रेखाचित्र : रेखाचित्र आधुनिक युग की उपज है। साहित्य में प्रयुक्त रेखाचित्र शब्द अंग्रेजी 'Sketch' का समानार्थक है। इसे शब्दचित्र भी कहा जाता है। जो स्थान कला के क्षेत्र में चित्रकला का और चित्रकार का है, वही स्थान साहित्य जगत में रेखाचित्र तथा रेखाचित्रकार का है। चित्रकला में रेखा, रूप और रंग का महत्त्व होता हैं, किंतु रेखाचित्र में रंगों का प्रयोग नहीं होता है। इसमें रेखाओं द्‌वारा मनोगत भावों का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। रेखाचित्र का उद्देश्य मानव समाज में प्रेम तथा संवेदना को सचेत करना होता है। यथार्थ की विश्वसनीयता और विषय की अनुभूत वास्तविकता रेखाचित्र की अपनी विशेषताएँ हैं। रेखाचित्र साहित्य में महादेवी वर्मा को रूप और चारित्रिक दोनों वर्णनों में विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

1.3.4.2.1.5 संस्मरण : संस्मरण आधुनिक हिंदी गद्य की एक महत्त्वपूर्ण, नूतन और आकर्षक विधा है। संस्मरण का मतलब है किसी व्यक्ति के संबंध में रमणीय घटनाओं का उल्लेख। संस्मरण के लिए अंग्रेजी पर्यायवादी शब्द Memoirs है। जीवनी साहित्य का एक ललित तथा लघुरूप है संस्मरण। संस्मरण का मूलाधार स्मृति है। संस्मरण की घटना विशिष्ट होना जरुरी होता है। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के शब्दों में, ''भावूक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अतिरंजित कर, व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं में विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है तब उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण का प्रचलन पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से ही हिंदी क्षेत्र में हुआ है। संस्मरण में संस्मरणकार अधिक आत्मनिष्ठ रहता है। संस्मरणकार जिन दृश्यों, घटनाओं और व्यक्तियों से प्रभावित होता है उन्हें अपने संस्मरण का विषय बनवाता है।

1.3.4.2.1.6 जीवनी : किसी व्यक्ति-विशेष के क्रमबद्ध जीवन वृत्तांत को जीवनी कहा जाता है। साहित्यिक विधाओं के अंतर्गत जीवनी का अपना एक विशेष महत्त्व है। जीवनी लिखने की परंपरा बहुत पुरानी है, किंतु हिंदी के लिए सर्वथा नवीन है। जीवनी, जीवन चरित्र अथवा जीवन चरित आदि तिनों शब्द पर्यायवाची है। जीवनी लेखक स्वयं की रुचि के अनुसार एखाद व्यक्ति की ओर आकर्षित होता है, उसी पर जीवनी लिखता है। जीवनी में काल्पनिकता तथा अतिरंजित प्रसंग का वर्णन नहीं होता है। चरित्र नायक का चित्रण करते समय उसके बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है।

1.3.4.2.1.7 आत्मकथा : आत्मकथा का यौगिक अर्थ आत्मकथा अर्थात आत्मा की कथा। इसमें 'स्व' की प्रधानता होती है। इसमें कल्पना का अभाव होता है। आत्मकथाकार को प्रत्यक्ष जीवन का चित्रण करने का मौका मिलता है। आत्मकथा का प्रतिपाद्य आत्मपरिक्षण और आत्मसमर्पण है। आत्मकथाकार पाठक के मन में आस्था जगाने का काम करता है। बिते हुए जीवन की सच्चाई आत्मकथाकार फिर एक बार देखता है। आत्मकथा का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व तटस्थता, कलात्मकता, आत्मतत्त्व, आत्मपरिक्षण है। आत्मकथाकार अपने जीवन के अच्छे और बुरे दोनों का चित्रण इमानदारी के साथ करता है।

1.3.4.2.1.8 रिपोर्ताज : रिपोर्ताज गद्य की साहित्यिक विधा है। इसे विशेष साहित्यिक महत्त्व है। 'रिपोर्ताज' शब्द मूलत: फ्रांसीसी भाषा का है। यह विधा अंग्रेजी के Report शब्द से समानता रखती है। इसे हिंदी में वृत्त-निर्देश तथा सूचनिका भी कहा जाता है। रिपोर्ताज पत्रकारिता से संबंधित लघु विधा है। इसका जन्म द्वितीय महायुद्ध के युद्ध-वर्णनों में हुआ था। रिपोर्ताज में सत्य की प्रधानता होती है। इसमें गद्य के साथ साथ पद्य की भी झलक पायी जाती है। 'रिपोर्ताज का लेखक एक ही समय में पत्रकार तथा साहित्यकार होता है।

1.3.4.2.1.9 यात्रा-साहित्य : यात्रा-साहित्य की परम्परा बहुत पुरानी है। अनेक ग्रंथों में इसकी झलक उसे देखने को मिलती है। मानव का जीवन व्यापक बनने का कारण वह प्राचीन काल से यात्रा कर रहा है। यात्रा के कारण मनुष्य के बौद्धिक विकास में बढोत्तरी होती है। प्राचीन काल से आज तक मनुष्य विभिन्न कारणों से यात्रा करता हुआ नजर आता है। इसके कारण ही मनुष्य की आनंद तथा उल्हास की भावना पुष्ट हुई है। वास्तविकता तथा विश्वसनीयता यात्रा-साहित्य में होती है। यात्रावर्णन करते समय इतिहास का बोध भी आवश्यक होता है। हिंदी साहित्य जगत् में यात्रा साहित्य बहुत कम लिखा गया है।

1.3.4.2.1.10 साक्षात्कार : साक्षात्कार एक नवविकसित, स्वतंत्र तथा महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा है। अंग्रेजी साहित्य में इसका अच्छा विकास हुआ है। साक्षात्कार के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द Interview है। साक्षात्कार के लिए भेंटवार्ता और बातचीत शब्द प्रयुक्त है। हिंदी में साक्षात्कार साहित्य बहुत कम लिखा गया है। राजेंद्र यादव ने रशियन रचनाकार चेखव से भेंट की थी। इस साक्षात्कार का बडा रोचक और भावपूर्ण वर्णन किया है। साक्षात्कार के बारे में डॉ. गोविंद त्रिगुणायत लिखते हैं, ''इन्टरव्यू उस रचना को कहते हैं, जिसमें लेखक किसी किसी व्यक्ति-विशेष से प्रथम भेंट में अनुभव होनेवाली उसके संबंध में अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को अपनी पूर्व-धारणाओं और आस्थाओं एवं रुचियों से रंजित कर सरस, भावपूर्ण ढंग से व्यंजना-प्रधान शैली में बंधे हुए शब्दों में व्यक्त करता है।''

1.3.4.2.2 पद्य : जो रचना छन्दबद्ध होती है उसे पद्य कहा जाता है। काव्य के परम्परागत रूप से प्रबंध और मुक्तक दो भेद माने जाते हैं। प्रबंध काव्य के भी तीन भेद किये गये हैं - महाकाव्य, खंडकाव्य, एकार्थकाव्य। पाठ्यमुक्तक और गोयमुक्तक आदि दो भेद मुक्तकाव्य के किये गये हैं।

1.3.4.2.2.1 प्रबंधकाव्य : प्रबंध काव्य को मुक्तक की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। प्रबंध काव्य में सामूहिक प्रभाव पर विशेष ध्यान दिया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार, ''प्रबंध काव्य में मानवजीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध श्रृंखला और स्वाभाविक क्रम से ठीक-ठीक निर्वाह के साथ-साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले तथा उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव करानेवाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए।'' प्रबंध काव्य के महाकाव्य, खंडकाव्य और एकार्थकाव्य आदि तीन प्रकारों की हम पृथक् पृथक् विवेचन करेंगे।

1.3.4.2.2.1.1 महाकाव्य : प्रबंध काव्य का महत्त्वपूर्ण प्रकार महाकाव्य है। महाकाव्य साहित्य की श्रेष्ठ विधा है। महाकाव्य वृद्ध काव्य रुप है। महाकव्य में मानव जीवन के सभी पक्षों का वर्णन होता है। महाकाव्य का अर्थ

है, महान काव्य। संस्कृत के 'महत्' और 'काव्य' शब्दों से मिलकर महाकाव्य शब्द बना है। महाकाव्य सर्गबद्ध, रचना है। भामह, रुद्रट, दंडी, हेमचन्द्र, विश्वनाथ, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और नगेन्द्र आदि ने महाकाव्य विषयक मान्यता प्रस्तुत की है। अरस्तू, एबरक्रॉम्बे, डेबनोट, लुकन टेसो, केर साहब, डिक्सन, वाल्टेयर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य का परिचय दिया है। महान कथानक, महान चरित्र, महान संदेश और महान वर्णन शैली आदि महाकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। पृथ्वीराज रासो, आल्हाखंड, कामायनी, साकेत, प्रिय प्रवास, कुरुक्षेत्र, जयभारत आदि महाकाव्य प्रसिद्ध हैं।

1.3.4.2.2.1.2 खंडकाव्य : खंडकाव्य में जीवन के किसी एक पक्ष का वर्णन होता है। इसका कलेवर लघु होता है। खंडकाव्य अपने आप में संपूर्ण होता है। खंडकाव्य का उद्देश्य महाकाव्य के समान चतुवर्ग के फल की प्राप्ति होता है। कहा जाता है कि उपन्यास और कहानी में जितना अन्तर रहता है, या नाटक और एकांकी में जितना अन्तर रहता है उतना ही अन्तर महाकाव्य और खंडकाव्य में होता है। कथावस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल वातावरण, रस, भाषाशैली और उद्देश्य आदि तत्त्व खण्डकाव्य के हैं। हिंदी साहित्य जगत् में बहुत से खंडकाव्य लिखे गए हैं। जयद्रथ वध, सैरन्ध्री, पंचवटी, भोजराज, द्रौपदी, संशय की रात, आँसू और पथिक आदि खंडकाव्य महत्त्वपूर्ण हैं।

1.3.4.2.2.1.3 एकार्थकाव्य : महाकाव्य और खंडकाव्य प्रबंधकाव्य के दो भेद प्राचीन आचार्यों ने माने थे, किंतु आचार्य विश्वनाथ मिश्रजीने 'एकार्थकाव्य' को भी प्रबंधकाव्य का भेद माना है। संक्षिप्ततम कथावस्तु, अल्पतम पात्र, रसभाव, भाषाशैली और उद्देश्य आदि एकार्थ काव्य के तत्त्व हैं। सीमित कथानक को लेकर लिखी जानेवाली विस्तृत कविता एकार्थकाव्य कहा जा सकता है। संवाद अतिसीमित होते हैं। दो-चार पात्रों से अधिक पात्र इसमें नहीं होते हैं। वातावरण का चित्रण होना ही चाहिए ऐसी बात नहीं है। प्रभाव छोडने के लिए वातावरण का चित्रण किया जाता है। निरालाजी ने 'राम की शक्तिपूजा' में 'अमावस्य की कालिमा' का चित्रण किया है।

1.3.4.2.2.2 मुक्तक काव्य : मुक्तक काव्य का अर्थ है - मुक्त रहनेवाला। मुक्तक भाव प्रधान काव्य की श्रेणी में आता है। सरस तथा भावूक कवि के मुक्तक लोकप्रिय हो पाते हैं। मुक्तक एक स्वतंत्र और निरपेक्ष रचना होती है। 'अग्निपुराण' में मुक्तक काव्य का उल्लेख मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, ''यदि प्रबंध-काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।'' भामह, वामन और राजशेखर ने मुक्तक पर चर्चा की है।

मुक्तक काव्य के दो भेद माने जाते हैं - 1) पाठ्य मुक्तक 2) गेय मुक्तक.

1.3.4.2.2.2.1 पाठ्य मुक्तक : इस काव्य की रचना ऐसे छन्दों में की जाती है, जिसे लय, ताल और संगीत के रूप में गाया न जा सके और जिसका सिर्फ पठन ही हो सके, उसे पाठ्य मुक्तक कहा जाता है। इसकी रचना दोहे, चौपाई और बरवै आदि लघु छन्दों में भी की जाती है।

1.3.4.2.2.2.2 गेय मुक्तक (गीतिकाव्य) : गेय पद रचना को गीतिकाव्य कहा जाता है। इसे प्रगीत-काव्य तथा गेय मुक्तक के नाम से भी पुकारा जाता है। भारत वर्ष में गीत प्रचलित हैं। महादेवी वर्मा के अनुसार,

''गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्यन्यात्मकता में गेय हो सके।''

हिंदी गीतिकाव्य में संस्कृत साहित्य का बडा प्रभाव है। गीतों का उन्नत रूप जयदेव के गीतों में मिलता है। हिंदी में साहित्यिक गीतों की सर्जना सर्वप्रथम विद्यापति ने की। कबीर के गीत जनसाधारण में अत्याधिक मात्रा में प्रिय हैं। सूरदास के पद गेय हैं। तुलसीदास जी ने भगवद्भक्ति में गीतों की संरचना की है। रीतिकाल में शाब्दिक चमत्कार अधिक हैं, किंतु गीति परम्परा कुछ शुष्क होती नजर आती है। आधुनिक काल में हरिश्चन्द्र ने गीति परम्परा को आगे बढाया। मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डे, बद्रीनाथ भट्ट, माधव शुक्ल ने अभिनव शैली में गीत प्रस्तुत किये हैं। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और शिवमंगल सिंह सुमन ने गीतों की रचना की है। पर हमें मानना ही पडेगा कि गीति-काव्य परंपरा अपनी शुरू की अवस्था से आजतक उत्तरोत्तर विकसित हुई दिखाई देती है।

1.3.4.2.3 चंपू काव्य : गद्य और पद्य के मिलेजुले रूप को चंपू काव्य कहा जाता है। इसे मिश्र काव्य भी कहा जाता है। जैसे मैथिलीशरण गुप्त का 'यशोधरा' काव्य। संस्कृत साहित्य में अनेक चंपूकाव्य उपलब्ध हैं। यथा नल चंम्पू, रामायण चंपू आदि।

1.3.4.4 निष्कर्ष :

कुलमिलकर हम संक्षेप में कहना चाहते हैं कि काव्य की अनेक विधाएँ प्राचीन हैं। काव्य प्रभाव रखने में सक्षम होता है। काव्य में शब्द और अर्थ का रमणीय संबंध देखने को मिलता है। बदलते परिप्रेक्ष्य में काव्य के विषय में भी बदलाव देखने को मिलता है। संस्कार, शिक्षा और ज्ञान देने में काव्य का योगदान सराहनीय है। कवि अपने अंतकरण में जाकर काव्य को अपने भावों से रंजित करता है। सुकोमल भावना के साथ साथ शब्द तथा स्वर की साधना काव्य में महत्त्वपूर्ण होती है। यह सच है कि भावात्मक विचारों का स्फोट काव्य में होता है।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. Literature शब्द ..... से बना है।
   (क) Poet (ख) Letter (ग) Lecture (घ) Write
2. आचार्य भरतमुनि के ग्रंथ का नाम ..... है।
   (क) काव्य प्रकाश (ख) साहित्य दर्पण (ग) नाट्यशास्त्र (घ) काव्यांलकार
3. आचार्य भरतमुनि का काव्य-क्षण ..... की दृष्टि से लिखा गया है।
   (क) महाकाव्य (ख) चंपूकाव्य (ग) दृश्यकाव्य (घ) खंडकाव्य
4. 'शब्दार्थो सहितो काव्यम्' परिभाषा ..... ने दी है।
   (क) वामन (ख) भामह (ग) भरतमुनि (घ) विश्वनाथ

5. 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' परिभाषा ..... ने दी है।

(क) भामह (ख) विश्वनाथ (ग) राजशेखर (घ) वामन

6. 'काव्यालंकार' के रचयिता ..... है।

(क) आनंदवर्धन (ख) मम्मट (ग) भामह (घ) जगन्नाथ

7. विंचेस्टर ने साहित्य के ..... तत्त्व माने हैं।

(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पाँच

8. कांतासंमित उपदेश को काव्य प्रयोजन ..... ने माना है।

(क) आनंदवर्धन (ख) विश्वनाथ (ग) मम्मट (घ) वामन

9. कविता हमारे ..... क्षणों की वाणी है।

(क) सीमित (ख) परिपूर्ण (ग) उत्कृष्ट (घ) सारपूर्ण

10. Poetry is articulate music ..... ने कहा है।

(क) कॉलरिज (ख) ड्रइडन (ग) शेक्सपियर (घ) वर्डस्वर्थ

11. ..... तत्त्व को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है।

(क) भाव (ख) बुद्धि (ग) कल्पना (घ) शैली

12. ..... तत्त्व में विचार की प्रधानता होती है।

(क) भाव (ख) बुद्धि (ग) कल्पना (घ) शैली

13. ..... में जीवन के किसी एक पक्ष का वर्णन होता है।

(क) खंडकाव्य (ख) महाकाव्य (ग) एकार्थ काव्य (घ) मुक्तक काव्य

14. ..... एक स्वतंत्र और निरपेक्ष रचना होती है।

(क) मुक्तक (ख) प्रबंध (ग) रीतिकाव्य (घ) नीतिकाव्य

15. डॉ. गुलाबराय के अनुसार काव्य प्रयोजन ..... हैं।

(क) समाजहित (ख) आत्महित (ग) व्यक्तिहित (घ) लोकहित

16. धावक के ग्रंथ का नाम ..... है।

(क) रत्नावली (ख) कवितावली (ग) सूरसारावली (घ) गंगा लहरी

17. 'काव्य रसायन' के रचयिता ..... हैं।

(क) देव (ख) बिहारी (ग) भूषण (घ) धनानंद

18. ..... के तीन प्रकार हैं।

(क) भाव (ख) बुद्धि (ग) कल्पना (घ) शैली

19. ..... का संबंध साहित्य के कलापक्ष से है।

(क) शैली तत्त्व (ख) भावतत्त्व (ग) बुद्धितत्त्व (घ) कल्पना तत्त्व

20. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ..... को काव्य प्रयोजन माना है।

(क) आत्महित (ख) विवेक जागृति (ग) आत्माभिव्यक्ति (घ) हृदय की मुक्तावस्था

21. रीति संप्रदाय के प्रधान उन्नायक ..... हैं।

(क) राजशेखर (ख) वामन (ग) भामह (घ) भरतमुनि

22. ..... को मिश्र काव्य कहा जा सकता है।

(क) प्रबंध काव्य (ख) मुक्तक काव्य (ग) चंपू काव्य (घ) नीतिकाव्य

23. गीतों का उन्नत रूप ..... के गीतों में मिलता है।

(क) विद्यापति (ख) जयदेव (ग) धावक (घ) केशवदास

24. रिपोर्ताज शब्द मूलत: ..... भाषा का है।

(क) अंग्रेजी (ख) रूस (ग) जपानी (घ) फ्रांसीसी

25. आधुनिक निबंध के जन्मदाता ..... को माना जाता है।

(क) मौन्तेय (ख) जॉनसन (ग) हडसन (घ) ब्रिस्टले

(आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' परिभाषा कौनसे आचार्य की है?
2. आचार्य मम्मट के ग्रंथ का नाम क्या है?
3. काव्यलंकार ग्रंथ के लेखक कौन हैं ?
4. 'रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्द : काव्यम्' परिभाषा किसने दी है?
5. 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' परिभाषा कौन से आचार्य की है?
6. सुमित्रानंदन पंत की काव्य परिभाषा कौनसी है?
7. 'काव्य-सरोज' ग्रंथ के लेखक कौन हैं?
8. Poetry is at bottom a criticism of life परिभाषा किसने दी है?
9. साहित्य के मूलतत्त्व कौन से हैं?
10. 'रत्नावली' नाटिका के रचयिता कौन हैं?

11. 'काव्य-प्रकाश' के रचयिता कौन हैं?
12. कौन से अंग्रेजी उपन्यासकार ने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास लिखा था?
13. पद्यकाव्य के बंध की दृष्टि से कितने भेद हैं?
14. चंपू काव्य किसे कहा जाता है?
15. कौन से तत्त्व भाव पक्ष से संबंधित हैं?
16. विचार तत्त्व का दूसरा नाम क्या है?
17. सौंदर्य सृष्टि उज्ज्वल करने का कार्य कौन सा तत्त्व करता है?
18. डॉ. श्यामसुंदर दास की काव्य परिभाषा कौनसी है?
19. कौन सी लघुविधा पत्रकारिता से संबंधित है?
20. श्रव्य काव्य किसे कहा जाता है?
21. कौन सी साहित्यिक विधा दृश्य काव्य के अंतर्गत आती है?
22. कला का उद्देश्य आनंद किसने कहा है?
23. 'कला को नीति की कसौटी पर कसना एक अंध परंपरा है' यह किसने कहा है?
24. आचार्य कुलपति मिश्र की परिभाषा कौन सी है?
25. आचार्य वामन के अनुसार काव्य के कितने प्रयोजन हैं?

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **समीचीन** - योग्य, उचित
2. **अली** - भ्रमर
3. **रागात्मक** - भावात्मक, भावप्रधान
4. **अशर्फी** - सोने की मुहर
5. **बागडौर** - लगाम
6. **भूषण जुत** - छंद, अलंकार आदि से युक्त
7. **प्रचलन** - प्रथा, रिवाज
8. **प्रगट** - प्रकट
9. **वर्ण्यविषय** - कथानक, कथावस्तु
10. **प्रवर्तक** - संस्थापक
11. **मूर्धन्य** - मस्तक में स्थित

12. **अव्याप्ति दोष** - परिभाषा जितने पर लागू होनी चाहिए, उससे कम पर लागू होती है।

13. **विधाता** - निर्माता

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) उचित पर्याय.

1. Letter	2. नाट्यशास्त्र	3. दृश्यकाव्य	4. भामह	5. विश्वनाथ
6. भामह	7. चार	8. मम्मट	9. परिपूर्ण	10. ड्राइडन
11. भाव	12. बुद्धि	13. खंडकाव्य	14. मुक्तक	15. आत्महित
16. रत्नावली	17. देव	18. कल्पना	19. शैली तत्त्व	20. हृदय की मुक्तावस्था
21. वामन	22. चंपू काव्य	23. जयदेव	24. फ्रांसीसी	25. मौन्तेय.

(आ) एक एक वाक्य में उत्तर.

1. 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' परिभाषा रुद्रट की है।
2. आचार्य मम्मट के ग्रंथ का नाम 'काव्य प्रकाश' है।
3. 'काव्यालंकार' ग्रंथ के लेखक आचार्य भामह हैं।
4. 'रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द काव्यम्' परिभाषा पंडितराज जगन्नाथ की है।
5. 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' परिभाषा भामह की है।
6. सुमित्रानंदन पंत की परिभाषा है, ''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।''
7. 'काव्य-सरोज' ग्रंथ के लेखक आचार्य श्रीपति हैं।
8. Poetry is at bottom a criticism of life परिभाषा मैथ्यू अर्नाल्ड की है।
9. भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली साहित्य के मूलतत्त्व हैं।
10. 'रत्नावली' नाटिका के रचयिता धावक हैं।
11. 'काव्यप्रकाश' के रचयिता आचार्य मम्मट हैं।
12. अंग्रेजी उपन्यासकार स्कॉट ने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास लिखा था।
13. पद्यकाव्य के बंध की दृष्टि से दो भेद हैं।
14. गद्य और पद्य के मिले जुले रूप को चंपू काव्य कहा जाता है।
15. भावतत्त्व, कल्पनातत्त्व और बुद्धि तत्त्व भाव पक्ष से संबंधित है।
16. विचार तत्त्व का दूसरा नाम बुद्धि तत्त्व है।
17. सौंदर्य सृष्टि उज्ज्वल करने का कार्य कल्पना तत्त्व करता है।

18. डॉ. श्यामसुंदर दास की काव्य परिभाषा है, ''काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनंद व चमत्कार की सृष्टि करे।
19. 'रिपोर्ताज' लघु विधा पत्रकारिता से संबंधित है।
20. जिस काव्य का आनन्द सुनकर या पढकर लिया जाता है उसे श्रव्य काव्य कहा जाता है।
21. नाटक, एकांकी, गीतिनाट्य आदि साहित्यिक विधाएँ दृश्यकाव्य के अंतर्गत आती हैं।
22. होमर ने कला का उद्देश्य आनन्द कहा है।
23. कला को नीति की कसौटी पर कसना एक अंध परंपरा है यह स्पिनगर्न ने कहा है।
24. ''जगते अद्‌भुत सुख सदन सब्दरु अर्थ कवित्त। यह लच्छन मैंने कियो, समुझि ग्रंथ बहु चित्त।।'' यह परिभाषा आचार्य कुलपति मिश्र की है।
25. आचार्य वामन के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं।

1.7 सारांश :

1. काव्यशास्त्र के अन्तर्गत काव्य और साहित्य एक दूसरे के समानार्थी समझे गए हैं। काव्य तथा साहित्य में मानव जीवन के साथ साथ परिवर्तन हो रहा है। प्राचीन ग्रंथों में साहित्य तथा काव्य के लिए वाङ्मय शब्द का प्रयोग पाया जाता है।

2. वास्तव में पौरवात्य और पाश्चात्य देशों में हजारों वर्षों से साहित्य तथा काव्य के लक्षण पर विचार होता आया है। अलग अलग सभी काव्य लक्षणों के विश्लेषण से बात स्पष्ट होती है कि पंडित राज जगन्नाथ का काव्य-लक्षण सबसे अधिक व्यापक है।

3. पाश्चात्य विद्‌वान विंचेस्टर और हडसन ने साहित्य के भाव, बुद्‌धि, कल्पना और शैली आदि तत्त्व माने हैं। बुद्‌धि तत्त्व से काव्य में सत्य और भाव तत्त्व से 'शिव' की रक्षा होती है, तो कल्पना और शैली तत्त्व से सुंदरम का निर्माण होता है। कुल मिलाकर काव्य के सभी तत्त्वों के संतुलित और समन्वित रूप से आदर्श काव्य की निर्मिति होती है।

4. काव्य या साहित्य के प्रकारों के संदर्भ में विद्‌वानों में मत मतांतर हैं। अधिकांश मात्रा में जो काव्य अथवा साहित्य के प्रकार सम्मत हैं उनकी चर्चा हमने की है।

5. यह सच है कि अलग अलग विद्‌वानों ने अपने अपने दृष्टिकोन से काव्य-प्रयोजनों को लेकर काफी विचार विमर्श किया है। आनंद प्रदान करना काव्य का आन्तरिक प्रयोजन माना जाता है और शेष सब बाह्य प्रयोजन हैं। विशेष बात यह है परिस्थिति के अनुरूप ही काव्यप्रयोजन संबंधी विचार भी बदलते रहे हैं।

1.8 स्वाध्याय :

1. साहित्य या काव्य के लक्षणों की चर्चा कीजिए।
2. काव्य अथवा साहित्य के तत्त्वों को विशद कीजिए।

3. काव्य के सभी प्रकारों का संक्षेप में परिचय दीजिए।
4. मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्य-प्रयोजनों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
5. काव्य-प्रयोजनों पर प्रकाश डालिए।
6. काव्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. किसी कवि, लेखक से मिलकर उनसे काव्य/साहित्य के स्वरूप और प्रयोजन पर विचार-विमर्श कीजिए।
2. किसी रचना को पढकर उसमें प्रयोजन ढूँढिए।
3. काव्य अथवा साहित्य के तत्त्वों के बारे में और जानकारी हासिल कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (भाग 1 और 2) - डॉ. गोविंद त्रिगुणायत
3. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
4. काव्यशास्त्र - शम्भूनाथ पाण्डेयं
5. साहित्य विवेचन - सुमन मल्लिक
6. काव्यशास्त्र के विविध आयाम - सं. मधु खराटे
7. भारतीय काव्यशास्त्र - डॉ. विजयपाल सिंह
8. साहित्यशास्त्र - डॉ. संजय नवले
9. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. राम प्रकाश
10. सुगम काव्यशास्त्र - डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी, डॉ. सुरेश माहेश्वरी
11. काव्यशास्त्र - डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय
12. साहित्यशास्त्र - डॉ. नारायण शर्मा
13. काव्यशास्त्र - डॉ. कृष्णदेव अवस्थी / यतीद्रनाथ तिवारी
14. हिंदी भाषा तथा साहित्यशास्त्र - डॉ. माधव सोनटक्के
15. काव्यालोचन - डॉ. ओमप्रकाश शर्मा
16. साहित्य रुप : शास्त्रीय विश्लेषण - डॉ. ज्ञानराज गायकवाड

○●○

सत्र V : इकाई 2

शब्दशक्ति, काव्यगुण, काव्यदोष

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय-विवेचन

2.3.1 शब्दशक्ति से तात्पर्य

2.3.2 शब्दशक्ति के भेद

2.3.2.1 अभिधा शब्दशक्ति

2.3.2.2 लक्षणा शब्दशक्ति

2.3.2.3 व्यंजना शब्दशक्ति

2.3.2 काव्य गुण

2.3.2.1 माधुर्य गुण

2.3.2.2 ओज गुण

2.3.2.3 प्रसाद गुण

2.3.3 काव्य दोष

2.3.3.1 पद्गत दोष (पद दोष)

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष)

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष)

2.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

1. शब्द का पद, रूप और वाक्य के साथ संबंध समझेंगे।
2. शब्दशक्ति के भेद समझेंगे।
3. शब्दशक्ति का प्रयोग तथा वर्गीकरण में सक्षम होंगे।
4. काव्य-गुणों का महत्त्व और भेद समझ सकेंगे।
5. काव्य-दोषों का स्वरूप और भेदों से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

मानव सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए भाषा का प्रयोग करता है। भाषा का हर शब्द किसी न किसी 'अर्थ' का वाचक होता है। विशिष्ट प्रयोजन के लिए 'शब्द' का जब विशिष्ट प्रयोग किया जाता है, तो मूल अर्थ से अलग अन्य अर्थ स्पष्ट होने लगता है। इस पाठ्यक्रम में शब्दशक्ति के अंतर्गत अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का सामान्य परिचय अपेक्षित है। साथ ही काव्य-गुण और काव्य-दोश के अंतर्गत उसके भेदों का परिचय देखेंगे।

2.3 विषय विवेचन :

शब्दशक्ति, काव्य-गुण, काव्य दोष का स्वरूप समझने के लिए हमें शब्द के स्वरूप, शब्दशक्ति से तात्पर्य, काव्य गुण का स्वरूप, काव्य दोष का स्वरूप तथा उसके भेदों से परिचित होना आवश्यक है।

शब्द और अर्थ का परस्पर संबंध रहा है। सार्थक वर्णो के समुह को 'शब्द' कहते हैं। मतलब अर्थपूर्ण ध्वनिसमूह को 'शब्द' कहा जाता है। संस्कृत आचार्यों ने शब्द और अर्थ पर बल देकर ही काव्य का स्वरूप स्पष्ट किया है। शब्द और अर्थ को पानी और लहर की उपमा देते हुए तुलसीदास कहते हैं -

''गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।''

अर्थात पानी में उठनेवाली लहर पानी से अलग दिखाई देती है। वास्तविक रूप में अलग नहीं, बल्कि पानी का एक अंग है। तात्पर्य शब्द का महत्त्व तथा अस्तित्व उसके अर्थ पर निर्भर है।

2.3.1 शब्दशक्ति से तात्पर्य :

साहित्यकार शब्द की अपार संपन्नता से अपनी वाणी को सजाता, सँवारता तथा सम्पन्नता भी प्रदान करता है। शब्द की यह सम्पन्नता जिस पर निर्भर है वह 'शब्दशक्ति' है। शब्द का अर्थबोध करनेवाली शक्ति 'शब्दशक्ति' कहलाती है। शब्द में एक या कई अर्थ छिपे होते हैं, समय और स्थिति के अनुसार वे विशेष कारण से अर्थ को व्यक्त करते हैं।

संस्कृत आचार्यों ने 'शब्दार्थ: सम्बन्ध: शक्ति' कहकर यह स्पष्ट किया कि शब्द के जिस व्यापार से अर्थ का बोध होता है उसे 'शब्दशक्ति' कहते हैं। शब्द के अनेकार्थ होते हैं जैसे कुत्ता याने लाचार, वफादार आदि अर्थ होते हैं। गधा याने मूर्ख, मूर्खता का प्रतीक आदि अर्थ होते हैं। स्पष्ट है कि कुत्ता, गधा शब्द का प्रयोग जिस व्यापार से वाक्य में होगा उसी का अर्थ उसी रूप में परिवर्तित होगा-यही शब्दशक्ति है। संक्षेप में शब्द का अर्थ-बोध करानेवाली शक्ति ही 'शब्दशक्ति' है।

2.3.2 शब्दशक्ति के भेद :

शब्द किसी - न- किसी अर्थ का वाहक होता है। साहित्यकार अपनी रचना में प्रतिभा के बलपर अनुभूति को वाणी या शब्दाकार देता है। इसलिए साहित्यकार को शब्दशक्ति का ज्ञान होना अनिवार्य है। क्योंकि शब्द के अर्थ पर काव्य की महानता निर्भर है।

संस्कृत आचार्यों ने शब्दशक्ति के प्रमुखत: तीन भेद माने हैं - 1) अभिधा, 2) लक्षणा, 3) व्यंजना । इन शब्दशक्तियों के अनुरूप शब्द और अर्थ तीन तरह के होते हैं।

1) वाचक शब्द से वाच्यार्थ
2) लक्षक शब्द से लक्ष्यार्थ
3) व्यंजक शब्द से व्यंग्यार्थ।

अर्थात् शब्द में छिपे अर्थ के आधार पर शब्दशक्ति के तीन भेद होते हैं।

2.3.2.1 अभिधा शब्दशक्ति :

जिस शब्दशक्ति द्वारा शब्द के मुख्य अर्थ का बोध होता है, उसे अभिधा शब्दशक्ति कहते हैं। इसे 'मुख्या' या

'अग्रिमा' भी कहा जाता है। जिस शब्द से मुख्यार्थ का बोध होता है उसे वाचक शब्द कहलाया जाता है, तथा मुख्यार्थ को वाच्यार्थ। वाच्यार्थ को 'संकेतितार्थ' भी कहा जाता है। विशिष्ट शब्द को विशिष्ट अर्थ-संकेत क्यों प्राप्त हुआ, इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने विस्तृत विचार-विमर्श किया है। डॉ. भगिरथ मिश्र ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है -

''अभिधा वह शब्दशक्ति या शब्द का व्यापार है, जिसमें साक्षात् संकेति या मुख्य अर्थ का बोध होता है।'' जैसे - 'पुस्तक' शब्द का 'पुस्तक' वस्तुसे या 'गाय' शब्द का गाय प्राणि से संकेत संबंध है। जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं, तो तत्काल उसका अर्थ श्रोता के मन पर अंकित हो जाता है। इस संबंध का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। यह मात्र सामाजिक परंपरा से जुडा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस संकेतित अर्थ का ज्ञान हमें कैसे होता है? शब्द-बोध के साधनों से हमें शब्द के संकेतित अर्थ का बोध होता है। विद्वानों ने इन साधनों - 1) व्याकरण 2) उपमान 3) कोश 4) आप्तवाक्य 5) व्यवहार 6) पद का सानिध्य 7) वाक्यशेष 8) विवृत्ति को निर्धारित किया है। संक्षेप में अभिधा शक्ति के द्वारा जिस अर्थ का बोध होता है उसे वाच्यार्थ, मुख्यार्थ, संकेतार्थ या अभिधार्थ कहा जाता है।

अभिधा के भेद :

अभिधा शब्दशक्ति के द्वारा जिन शब्दों का अर्थबोध होता है, वे तीन प्रकार के माने गये हैं। इसी आधार पर अभिधा के तीन भेद माने जा सकते हैं। 1) योग अभिधा 2) रूढ अभिधा 3) योगरूढ अभिधा।

1) योग अभिधा : योग से तात्पर्य है व्युत्पत्ति। व्युत्पत्ति के सहारे शब्द के मुख्यार्थ का बोध करानेवाली शक्ति 'योग अभिधा' कहलाती है। और इस तरह के वाचक शब्द 'योगिक'। योगिक शब्द प्रकृति और प्रत्यय के योग से बने होते हैं। व्युत्पत्ति के सहारे इन शब्दों के मूल अवयवों को अलग-अलग कर उनके अलग-अलग अर्थ के योग से मुख्यार्थ का बोध किया जाता है।

उदा. तरूजीवि = तरू + जीवि
पशुतुल्य = पशु + तुल्य आदि।

2) रूढ अभिधा : कुछ शब्दों का मुख्यार्थ बोध व्युत्पत्ति से न होकर रूढि से होता है। विशिष्ट अर्थ-संकेत रूढिद्वारा प्राप्त हुआ होता है, ऐसा सार्थक ध्वनि समूह 'रूढ शब्द' कहलाता है। ऐसे शब्दों की कोई व्युत्पत्ति नहीं होती। इनका मुख्यार्थ रूढि से होता है। अत: 'रूढ अभिधा' उस शब्दशक्ति को कहा जाए, जिसके द्वारा शब्द के रूढि प्रदत्त मुख्यार्थ का बोध हो जाता है।

उदा. गृह, तरू, चंद्र, पशु आदि।

3) योगरूढ अभिधा : कुछ योगिक शब्द ऐसे होते हैं, जिनके व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी होते हैं, लेकिन उससे संदर्भित एक अन्यार्थ रूढि द्वारा मुख्यार्थ बन जाता है। इस मुख्यार्थ का बोध करनेवाली शक्ति 'योगरूढ अभिधा' कहलाती है।

उदा. 'पंकज'। शब्द का व्युत्पत्तिजनक अर्थ होगा पंक + ज याने 'कीचड में उत्पन्न'। कीचड में उत्पन्न कई वस्तुएँ होती हैं, लेकिन रूढिद्वारा 'पंकज' का अर्थ 'कमल' होता है।

उदा. गिरीधारी, जलद, पशुपति आदि।

अभिधा शब्दशक्ति सभी वाक्व्यवहर तथा शास्त्र व्यवहार में महत्त्वपूर्ण स्थान पाती है।

2.3.2.2 लक्षणा शब्दशक्ति :

जब मुख्यार्थ या वाच्यार्थ ग्रहण करने में बाधा उपस्थित हो, तब अन्यार्थ ग्रहण करने में सहायक शब्दशक्ति लक्षणा को अपनाना पडता है।

आचार्य मम्मट के मतानुसार जब मुख्यार्थ में बाधा आ जाती है, तब रूढि या प्रयोजन के आधार पर मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखनेवाले किसी अन्यार्थ का आरोपन किया जाता है। लक्षणा शब्दशक्ति द्वारा भिन्नार्थ का ज्ञान करानेवाले शब्द 'लक्षक' तथा भिन्नार्थ 'लक्ष्यार्थ' या 'लक्षणार्थ' कहलाया जाता है।

उदा. 'मेरा कुत्ता शेर का चाचा है।' कुत्ता शेर का चाचा नहीं हो सकता। अत: यहाँ मुख्यार्थ ग्रहण में बाधा आ गयी है। कुत्ते की बढाई करने के लिए यहाँ कुत्ते पर शेर के चाचा होने का आरोपन है। यहाँ 'शेर का चाचा' होने का तात्पर्य आवाज तथा भयंकरता में शेर से बढकर होना है। इस आरोपित लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध मुख्यार्थ से भी जुडा है।

लक्षणा शब्दशक्ति के अर्थग्रहण के व्यापार में तीन विशेषताएँ होती हैं।

1) मुख्यार्थ या वाच्यार्थ में बाधा।

2) मुख्यार्थ से कुछ न कुछ संबंध।

3) रूढि या प्रयोजन द्वारा अन्य अर्थ का बोध।

लक्षणा के भेद :

रूढि और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद होते हैं - 1) रूढि लक्षणा 2) प्रयोजनवती लक्षणा।

1) रूढि लक्षणा : मुख्यार्थ को छोडकर रूढि या प्रचलित परम्परा के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध करानेवाली शब्दशक्ति रूढि लक्षणा कहलाती है।

उदा. वह कुशल यौद्धा है। यहाँ कुशल शब्द का मुख्यार्थ बाधित हुआ है। 'कुशल' का मुख्यार्थ है - 'कुशाओं को काटनेवाला।' लेकिन इस शब्द का अन्यार्थ 'चतुर' इतना रूढ हुआ हैं कि अब वह उनका मुख्यार्थ ही बन गया है।

2) प्रयोजनवती लक्षणा : मुख्यार्थ की बाधा होनेपर विशिष्ट प्रयोजन के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध करानेवाली शब्दशक्ति प्रयोजनवती लक्षणा कहलायी जाती है।

उदा. 'वह चंद्रमुखी है।' यहाँ चंद्र तथा युवती के मुख में सुंदरता का गुण साधर्म्य सम्बन्ध है। इसलिए 'चंद्रमुखी का लक्ष्यार्थ हुआ 'सुंदर मुख'।

प्रयोजनवती लक्षणा के प्रमुखत: दो भेद माने जाते हैं - 1) गौणी लक्षणा 2) शुद्धा लक्षणा। अर्थ की सुंदरता में लक्षणा शब्दशक्ति का अपना महत्त्व है।

2.3.2.3 व्यंजना शब्दशक्ति :

यह शब्द की तिसरी शक्ति है। व्यंजना का अर्थ विशेष रूप से स्पष्ट करना, विकसित करना है। अभिधा एवं लक्षणा शक्तियों के अपना-अपना कार्य कर शान्त हो जाने पर जिस शक्ति के द्वारा अर्थ का ज्ञान होता है, उसे 'व्यंजना शब्दशक्ति' कहते हैं। ऐसे शब्द को व्यंजक और अर्थ को व्यंग्यार्थ कहते हैं।

उदा. 'सूर्य अस्त हुआ।' इसका मुख्यार्थ हुआ 'सूर्य डूब गया, दिन बीत गया, लक्ष्यार्थ हुआ, संध्या हो गयी। जब कि व्यंग्यार्थ प्रयोग करनेवाला और श्रोता की रूचि, स्थिति और प्रवृत्ति के अनुरूप कई होंगे। इस वाक्य का श्रोता किसान हो तो इसका अर्थ होगा - 'अब काम खत्म करके घर चलना चाहिए।' चोर हो तो 'अब चोरी की तैयारी करनी है' आदि अर्थ होंगे।

व्यंजना के भेद :

अभिधा और लक्षणा का सम्बन्ध केवल शब्द से होता है, परंतु व्यंजना का सम्बन्ध केवल शब्द से ही नहीं बल्कि अर्थ से भी होता है। इसी आधारपर व्यंजना के दो प्रमुख भेद माने जाते हैं - 1) शाब्दी व्यंजना 2) आर्थी व्यंजना।

1) शाब्दी व्यंजना : जब व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ किसी विशिष्ट शब्द के प्रयोग पर अवलम्बित रहा करता है, तब शाब्दी व्यंजना हुआ करती है। व्यंजक शब्द के स्थान पर पर्यायवाची शब्द रखने से व्यंग्यार्थ बोध नहीं हो पाता, इसलिए यह व्यंजना शब्द प्रधान होती है।

उदा. ''चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि वह वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥''

इस दोहे में 'वृषभानुजा' तथा 'हलधर के बीर' अनेकार्थी शब्द हैं। इनका अभिधात्मक अर्थ - 'वृषभ अनुजा' अर्थात् 'राधा' तथा 'हलधर के बीर' अर्थात 'कृष्ण' है। व्यंजना शक्ति द्वारा अर्थ ध्वनित हो जाता है 'वृषभ अनुजा' अर्थात् गाय तथा 'हलधर के बीर' अर्थात् 'बैल'।

2) आर्थी व्यंजना : जब व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ किसी विशेष शब्द पर अवलम्बित न होकर संपूर्ण अर्थपर ही अवलम्बित रहता है, तब आर्थी-व्यंजना होती है।

उदा. ''यह गांव गंगा में ही बसा है।'' इसके कई व्यंग्यार्थ होंगे - श्रोता धार्मिक हो तो व्यंग्यार्थ होगा ''गांव पवित्र है, यहाँ रहना चाहिए। हर दिन गंगास्नान का पुण्य मिलेगा।''

2.3.2. काव्य-गुण :

काव्य सर्जना में कुछ तत्त्व सक्रिय रहते हैं, जिनका उपयोग कवि या रचनाकार करता है। शब्द और अर्थ तो

काव्य के शरीर होते हैं तथा रस ही उसकी आत्मा के स्थान पर रहता है। रस ही काव्य में मुख्य होता है और 'गुण' इस मुख्य रस के ही धर्म होते हैं और काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।

रस को काव्य की आत्मा और अलंकारों को कविता का बाह्य सौंदर्य बढानेवाला धर्म स्वीकारने वाले आचार्यो ने गुण का उल्लेख रस और अलंकार दोनों के संदर्भ में किया है। आचार्य मम्मट ने गुण की परिभाषा दी है -

''ये रसस्यादिनो धर्मा: शौर्यादय इवात्मन:।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा:॥''

अर्थात् जिस तरह मनुष्य के शरीर में शौर्य आदि गुणों की स्वाभाविक स्थिति होती है, वैसे ही कविता में रस को उत्कर्ष प्रदान करनेवाले धर्म को गुण कहा जाता है।

'अग्निपुराण' में कहा गया है कि किसी नारी के शरीर पर स्वाभाविक सौंदर्य आदि गुणों के अभाव में जिस तरह हार आदि आभूषण भार लगते हैं वैसे ही अलंकारों से युक्त होकर भी काव्य गुण के अभाव में आनंद प्राप्त नहीं हो सकता। आचार्य दंडी ने गुण को काव्य का प्राण रूप माना है। गुणों की संख्या के बारे में साहित्यशास्त्रियों के बीच प्रारंभ में मतभेद रहा है। लेकिन अंतत: काव्य गुणों की संख्या दस मानी है।

1) श्लेष 2) प्रसाद 3) समता 4) समाधि 5) माधुर्य 6) ओज 7) सुकुमारता 8) अर्थव्यक्ति 9) उदारता 10) कान्ति।

अधिकांश : आचार्यों ने (दंडी, मम्मट, कुंतक, हेमचंद्र, विश्वनाथ, आनंदवर्धन आदि' माधुर्य, ओज एवं प्रसाद इन तीन गुणों को प्रमुख माना है। आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ ने इन्हीं तीन गुणों में अन्य का समावेश स्वीकृत किया है। हिन्दी के अधिकतर आचार्यों ने भी इन्ही तीन गुणों को महत्त्वपूर्ण माना है। इन गुणों का परिचयात्मक विश्लेषण निम्नलिखित है।

2.3.2.1 माधुर्य गुण :

जिस काव्य की रचना से अन्त:करण आनंद से भर जाय, वहाँ माधुर्य गुण होता है। कविता में माधुर्य गुण के समावेश के कारण श्रृंगार आदि रसों की प्रस्तुती में आकर्षण का समावेश होता है। इसमें मधुरता व्यंजक शब्द तथा वर्ण का प्रयोग किया जाता है। ताकि कविता में लगातार रसात्मकता और मधुरता का बोध होता रहे।

माधुर्य गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

(अ) इसमें ट, ठ, ड, ढ - का प्रयोग न हो।

(ब) वर्गान्त्य वर्णो के प्रयोग से सुकुमारता बढती है।

(क) र, ण - वर्ण भी माधुर्य - व्यंजक होते हैं।

(ड) इसमें बहुत छोटे-छोटे समास प्रयुक्त हो।

उदा. *''कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।*
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही॥ (रामचरितमानस)

2.3.2.2 ओज गुण :

जिस काव्य गुण के कारण चित्त में स्फूर्ति एवं मन में तेज उत्पन्न हो, उसे ओज कहा गया है। ओजपूर्ण कविता के सुनने मात्र से मन में जोश और आवेग उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण वीर, बीभत्स और रौद्र जैसे रसों के लिए ओजगुण की योजना की जाती है। वक्र अर्थवाले लम्बे सामासिक पदों और कठोर वर्णों से बने काव्य द्वारा ओज गुण की प्रस्तुती की जाती है।

ओज गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

(अ) ऊपर-नीचे रेफ युक्त वर्णों का प्रयोग हो।
(ब) ट, ठ, ड, ढ तथा श, ष वर्णों का प्रयोग ओजवर्धक होता है।
(क) इसमें दीर्घ समासवाली रचना होनी चाहिए।
(ड) इसकी पदयोजना या रचना औचित्यपूर्ण हो।

उदा. *''इंद्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर*
रावन-सदंभ पर रघुकुल राज है,
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाहु पर,
ज्यों सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज हैं। (भूषण)

2.3.2.3 प्रसाद गुण :

आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि सूखे ईंधन में अग्नि के समान या धुले हुए वस्त्रं में पानी की भाँति तत्काल मन में व्याप्त हो जानेवाला गुण प्रसाद है। यह गुण ऐसा सरल और सुबोध अर्थ व्यक्त करता है कि पंक्तियों से गुजरते ही कविता साकार हो उठती है।

प्रसाद गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नानुसार हैं।

(अ) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण संघटना नहीं है।
(ब) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण त्याज्य या सीमित नहीं।
(क) सभी रस में तत्काल अर्थ प्रदान करता है।
(ड) प्रसाद गुण व्याप्त एवं प्रसन्नता देता है।

उदा. *''चारूचन्द्र की चंचल किरणे, खेल रहीं हैं जल-थल में।*
बिमल चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अंबरतल में।

पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से।
मानो झीम रहे हैं तरू भी मन्द पवन के झोंको से॥'' (पंचवटी)

2.3.3 काव्यदोष :

आचार्य भरत ने जब महान निर्दोषिता को काव्य गुण की संज्ञा दी थी, तभी दोष रहित काव्य सृजन की पहल की थी। आचार्य भामह ने लिखा है कि काव्य सृजन न करना कोई अपराध नहीं है, लेकिन सदोष काव्य रचना करना तो साक्षात मृत्यु है।

काव्य में दोषों को टालना कविता की प्रारंभिक अनिवार्यता के रूप में अनेक साहित्यशास्त्रियों ने मान्यता दी है। मम्मट ने तो काव्य की परिभाषा में ही दोषों का विरोध किया है -

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति: पुन: क्वापि।''

आचार्य भरत एवं वामन ने काव्य दोष को काव्य गुण का विपर्य माना है। काव्य दोषों की संख्या पर काफी विचारविमर्श विविध विद्वानों ने किया है। आचार्य विश्वनाथ ने दोष की परिभाषा देते हुए लिखा है - ''रसापकर्षका दोषा:'' मतलब 'दोष' वे हैं जो रस या काव्य के आत्मतत्त्व के अपकर्षक होते हैं। लेकिन सभी मतों का सार रूप स्वीकार करे तो आज काव्यदोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं - शब्ददोष, अर्थदोष, रसदोष।

2.3.3.1 शब्द दोष (पद दोष) :

काव्य में आनंद प्रदान करनेवाला प्रारंभिक अवयव शब्द या पद होता है। इस नाते यदि शब्दों के संघटना में ही दोष हो, तो संपूर्ण कविता का प्रभाव तथा आनंद समाप्त होता है। इसीलिए जहाँ शब्द या पद रचना और प्रयोग के कारण काव्यार्थ की प्रतीति में बाधा उत्पन्न होती है, वहाँ पद्गत दोष या पददोष कहा जाता है। आचार्य मम्मट ने पददोष के १६ प्रकार बताए हैं। उनमें से कुछ दोषों का विवेचन निम्न प्रकार है -

(अ) श्रुति कटुत्व : काव्य रचना करते समय सुनने में मधुर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। रस के विपरित कानों को खटकनेवाले कठोर वर्ण प्रयोग से श्रुति कटुत्व दोष होता है।

उदा. *''ठाट है सर्वत्र घर या घाट है।*
लोक-लक्ष्मी की विलक्षण हाट है।''

इन पंक्तियों में ट, ठ - कठोर वर्ण प्रयोग के कारण श्रुतिकटुत्व आया है।

(ब) अश्लीलता : यह दोष किसी ऐसे पद के प्रयोग के कारण होता है, जिससे अभिप्रेत अर्थ निकलने के साथ ही कोई लज्जा, घृणा और अमंगलकारी अर्थ भी निकलते हैं।

उदा. *''गिर जाय कहीं यदि किसी से मूल्यवान वस्तु*
लोभ से उठाना उसे चाटना है नाक का।''

यहाँ 'नाक का चाटना' घृणा व्यंजक होने के कारण अश्लीलता प्रकट करता है।

शब्द या पददोषों के माध्यम से यही सूचित होता है कि कविता में सरल, सहज एवं बोध गम्य शब्दों का उपयोग होना चाहिए।

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष) :

काव्य में शब्दों का अर्थ-ग्रहण ही आनंद एवं प्रभाव उत्पन्न करता है। जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है, वहाँ अर्थ दोष पाए जाते हैं। आचार्य मम्मट ने २३ प्रकार के अर्थ दोषों का उल्लेख किया है। अर्थ समझने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने चाहिए। अर्थ में परस्पर विरोध नहीं होने चाहिए। अर्थ प्रकटीकरण में नवीनता आनी चाहिए। अर्थ को जानलेने पर चित्त में न तो अमंगल की भावना होनी चाहिए और न उद्वेग ही उत्पन्न होना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार किसी पद के मुख्य अर्थ के अनुपकारी होने पर अपुष्ट दोष होता है। जिस पद की अनुपस्थिति पर भी अर्थ को हानी नहीं पहुँचती हो।

उदा. *''सारे उपवन के विशाल वायुमण्डल में*
प्रेमी प्रीति-संभव के मंगल मनाते हैं।''

इस पद में विशाल विशेषण निरर्थक है, क्योंकि वायुमंडल तो विशाल होता ही है। जहाँ एक ही शब्द और अर्थ की बार-बार आवृत्ति हो, वहाँ पुनरुक्त अर्थ दोष होता है। इससे कवि के शब्द दारिद्र्य का पता चलता है।

उदा. *''धन्य है कलंक हीन जीना एक क्षण का*
युग-युग जीना सकलंक धीक्कार है।''

स्पष्ट है कि पुनरूक्त अर्थदोष के कारण कविता वे प्रभाव और आनंद में बाधा उपस्थित हुई है।

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष) :

रस कविता का अनिर्वचनीय आनन्द है, लेकिन जहाँ रसास्वाद में बाधा उत्पन्न हो जाती है - वहाँ विद्वानों ने विविध रस दोषों को स्वीकृत किया है। वैसे देखा जाय तो कविता में रस का स्पष्ट उल्लेख अपने आप में एक दोष है। कई कवियों ने रस के स्थायी, संचारी और व्याभिचारी भावों को स्वयं वर्णित कर रस के स्वाभाविक उद्रेक को बाधित किया है। आचार्य मम्मट ने तेरह प्रकार के रस दोषों की चर्चा की है। स्वशब्दवाच्यता तो सर्वप्रमुख रस दोष है।

उदा. *''आह कितना सकरूण मुख था,*
आर्द्र सरोज अरुण मुख था।''

इन पंक्तियों में करुण रस का कवि स्वयं उल्लेख करता है।

जहाँ रस, स्थायीभाव या व्यभिचारी भाव की पुष्टि उनसे सम्बन्धित भावों का वर्णन किए बिना ही उनके शब्दश: कथन से की जाए वहाँ रसदोष होता है।

उदा. *''ज्यों ही चूमा प्रिय ने उसको*
लज्जा मन आयी।''

रसों के पारस्परिक विरोध की एक पंक्ति -

उदा. *''इस पार प्रिये तुम हो मधु है*
उस पार न जाने क्या होगा?''

कुल मिलाकर दोषपूर्ण काव्य निंदा का पात्र होता है, चाहे उसमें शब्द, अर्थ और रसदोष में से कोई भी एक हो। कविता का अपकर्ष करनेवाले दोषों से बचकर ही कोई श्रेष्ठ कवि हो सकता है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. शब्दशक्ति के ..... भेद हैं।
   (अ) 2 (ब) 3 (क) 4 (ड) 6
2. अभिधा शब्दशक्ति में शब्द के ..... का बोध होता है।
   (अ) लक्ष्यार्थ (ब) व्यंग्यार्थ (क) वाच्यार्थ (ड) तात्पर्यार्थ
3. ..... में शब्द के मुख्यार्थ में बाधा होती है।
   (अ) अभिधा (ब) लक्षणा (क) व्यंजना (ड) शब्दशक्ति
4. गौणी लक्षणा में ..... के आधार पर अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है।
   (अ) सामीप्य (ब) तात्कर्म्य (क) कार्यकारण (ड) सादृश्यसंबंध
5. व्यंजना शब्दशक्ति से निकले अर्थ को ..... कहा जाता है।
   (अ) व्यंजनार्थ (ब) व्यंग्यार्थ (क) अभिधेयार्थ (ड) वाच्यार्थ
6. 'विद्यालय' ..... प्रकार का शब्द है।
   (अ) रूढ (ब) यौगिक (क) योगरूढ (ड) वाचक
7. कविता की आत्मा ..... होती है।
   (अ) रस (ब) शब्द (क) अर्थ (ड) अलंकार
8. अधिकतर विद्वान काव्य में प्रमुख ..... गुण मानते हैं।
   (अ) पाँच (ब) तीन (क) दो (ड) एक
9. ओज गुण मन में ..... उत्पन्न करता है।
   (अ) तेज (ब) निराशा (क) आनंद (ड) क्रोध
10. जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है वहाँ ..... दोष होता है।
    (अ) पद (ब) अर्थ (क) शब्द (ड) श्रुति

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **गिरा** - भाषा, बोली
2. **आप्तवाक्य** - अधिकृत व्यक्ति का कथन
3. **योग** - व्युत्पत्ति
4. **तरू** - वृक्ष
5. **संध्या** - शाम
6. **चिरजीवि** - अमर
7. **जोरी** - जोडी
8. **वृषभ** - बैल
9. **नूपुर** - पायल
10. **चारू** - सुंदर
11. **तरू** - वृक्ष, पेड
12. **बिमल** - स्वच्छ, पवित्र
13. **उपवन** - बगिचा
14. **अरूण** - लाल रंग

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) उचित पर्याय.

1. (ब)	2. (क)	3. (ब)	4. (ड)	5. (ब)
6. (ब)	7. (अ)	8. (ब)	9. (अ)	10. (ब)

2.7 सारांश :

1. शब्द का अर्थ-बोध करानेवाली शक्ति 'शब्दशक्ति' कहलाती है। इसके तीन भेद स्वीकृत किए हैं - अभिधा, लक्षणा, व्यंजना।

2. अभिधा वह शब्दशक्ति है, जिसमें साक्षात् संकेतित या मुख्य अर्थ का बोध होता है।

3. लक्षणा वह शब्दशक्ति है, जिसमें रूढि अथवा विशेष प्रयोजन के कारण मुख्य अर्थ में बाधा होने पर मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य अर्थ की प्रतीति होती है।

4. व्यंजना वह शब्दशक्ति है, जो अभिधा और लक्षणा शक्तियों के अपना अर्थ बोध कराने के बाद अन्य अर्थ का बोध कराती है।

5. काव्य गुण मुख्य रस के धर्म होते हैं। काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।

6. काव्य दोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं - शब्ददोष, अर्थदोष, रसदोष।

2.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए।

1. शब्दशक्ति का स्वरूप।
2. अभिधा शब्दशक्ति।
3. लक्षणा शब्दशक्ति।
4. व्यंजना शब्दशक्ति।
5. काव्य गुण की विवेचना।
6. माधुर्य गुण।
7. ओज गुण।
8. प्रसाद गुण।
9. काव्य-दोष की विवेचना।
10. पदगत दोष।
11. अर्थगत दोष।
12. रसगत दोष।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. ग्रंथो तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रयुक्त शब्दों का शब्दशक्तियों के भेदों में वर्गीकरण कीजिए।
2. अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शब्दशक्ति के अलग अलग उदाहरण ढूँढकर लिखिए।
3. विविध कविताओं में माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण ढूँढकर लिखिए।
4. विविध कविताओं में पद्गत, अर्थगत, रसगत दोष लिखिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2. काव्यशास्त्र - डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी
3. काव्यशास्त्र - डॉ. बालेन्दु तिवारी, डॉ. सुरेश माहेश्वरी
4. साहित्यशास्त्र - डॉ. भरत सगरे
5. हिंदी भाषा और साहित्यशास्त्र - डॉ. माधव सोनटक्के

○●○

सत्र V : इकाई 3

रस : परिभाषा, भेद, अंग

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय-विवेचन

3.3.1 रस : स्वरूप (परिभाषा)
आचार्य भरतमुनि
आचार्य विश्वनाथ
आचार्य मम्मट
आचार्य रामचंद्र शुक्ल
डॉ. दशरथ ओझा
रसिक की विशेषताएँ

3.3.2 रस के अंग
स्थायी भाव
विभाव
अनुभाव
संचारी भाव/व्याभिचारी भाव

3.3.3 रस के भेद
श्रृंगार रस
वीर रस
हास्य रस

रौद्र रस
भायानक रस
बीभत्स रस
करूण रस
अद्‌भुत रस
शांत रस
वात्सल्य रस
भक्ति रस

3.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 क्षेत्रीय कार्य

3.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

प्रस्तुक इकाई पढने के पश्चात् आप,

1. रस के महत्त्व से परिचित होंगे।
2. रस की विभिन्न परिभाषाओं से अवगत होंगे।
3. रस के विभिन्न अंगों से परिचित होंगे।
4. रस के विभिन्न भेदों से परिचित होंगे।
5. काव्य में प्रयुक्त रस पहचानने में सक्षम होंगे।

3.2 प्रस्तावना :

'रस' शब्द भारतीय संस्कृति और साहित्य के चरम विकास से संबंधित है। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के लिए होता है। फलों का रस, औषधी का रस, परमात्मा के भाव से उत्पन्न रस, संगीत द्वारा उत्पन्न रस आदि रस के विभिन्न अर्थ दिखाई देते हैं। जीवन के सुव्यवस्थित निर्माण के लिए रस अनिवार्य है। इससे स्पष्ट होता है कि रस आस्वाद्य तत्त्व और द्रवत्त्व के रूप में दिखाई देता है।

'रस' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत में इस प्रकार दी है, ''रसस्यतेऽ सौ इति रस:'' अर्थात जिससे आस्वाद मिले वही रस है। रस शब्द साहित्य में ही नहीं बल्कि जीवन के हर पहलुओं में भिन्न भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यानुभूति को 'रस' संज्ञा से अभिहित किया है। काव्य का लक्ष्य तथा उद्देश्य पाठक को आनंदानुभूति प्रदान करता है। इस काव्यजन्य आनंद का ही दूसरा नाम रस है। साहित्य में रस को आत्मा की संज्ञा से अभिहित किया है। रस रहित काव्य सफल काव्य नहीं होता। अत: काव्यानंद को ही रस कहा गया है।

3.3 विषय विवेचन :

अब हम रस की परिभाषाएँ, रस के अंग तथा रस के भेदों का अध्ययन करेंगे।

3.3.1 रस की परिभाषा :

आचार्य भरतमुनि :

रस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनी माने जाते हैं। उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन किया है। भरतमुनि के कार्य को भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त, भोजराज, विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्योंने आगे बढाया। आगे चलकर हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों ने भी रस सिद्धांत का महत्त्व स्वीकार किया है। तथा रस को परिभाषित करने का प्रयास किया है। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में रस की परिभाषा दी है...

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगा द्रस निष्पत्ति:''

उनके मतानुसार विभाव अनुभाव और व्याभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस रस सूत्र में रस निष्पत्ति के लिए आवश्यक विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव इन तीन अंगों का निर्देश किया गया है। भरतमुनि के रस सूत्र पर काफी विचार-विमर्श हुआ। कई आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूप में इसे परिभाषित करने का प्रयास भी किया है। स्वयं भरतमुनि ने अपने रस-सूत्र की व्याख्या देते हुए लिखा है - ''जिस प्रकार नाना व्यंजनों औषधियों और द्रव्यों के संयोग से रस (भोज्यरस) की निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार नाना भावों के उपरांत वों स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होते हैं।'' अर्थात विभाव अनुभाव तथा व्याभिचारी भावों के संयोग से सामाजिक में स्थित स्थायी भावों का उद्रेक होता है और वे ही स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होता हैं।

आचार्य अभिनव गुप्त:

भरमुनि के रस-सूत्र के व्याख्याता अभिनव गुप्त ने रस को 'विषय' से निकालकर 'विषयी' में समाविष्ट करने

का सफल प्रयास किया है। वे रस को 'अस्वाद्य' न मानकर 'आस्वाद्य' मानते हैं। सामाजिक किसी विशिष्ट प्रसंग के साथ एकाकार होकर आत्म-विभोर हो जाता है। यही आनंदमयी चेतना रस है।

आचार्य विश्वनाथ:

अभिनव गुप्त के पश्चात् रस के स्वरूप का सर्वांग विवेचन आचार्य विश्वनाथ ने किया है। वे कहते हैं...

''सत्त्वोद्रेक अखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मय:।
वेद्यान्तर स्पर्श शून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदर:।
लोकोत्तर चमत्कार प्राण: कैश्चित् प्रमातृभि:।
स्वाकारवदभिन्नत्त्वेनायमास्वाद्यते रस:।''

अर्थात चित्त में सत्वोद्रेक की स्थिति में विशिष्ट संस्कारों से युक्त सहृदय अखंड, स्वप्रकाशानंद, चिन्मय, अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों से विमुक्त, ब्रह्मानंद सहोदर, लोकोत्तर चमत्कार, प्राण रस के निज स्वरूप से अभिन्न होकर अस्वादन करते हैं।

आचार्य मम्मट :

आचार्य मम्मट के अनुसार, ''विभावादि के संयोग से निष्पन्न होनेवाली आनंदात्मक चित्तवृत्ति ही रस है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने रस को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''सत्त्वोद्रेक या हृदय की मुक्तावस्था ही 'रस' है।''

डॉ. दशरथ ओझा :

इन्होंने रस की परिभाषा देते हुए लिखा है, ''काव्य के पढने या नाटक के देखने से हमारे हृदय में जो क्रोध, घृणा, प्रेम आदि भाव जगते हैं उसे 'रस' कहते हैं।''

डॉ. भगीरथ मिश्र :

डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार, ''रस एक विशेष प्रकार का आनंद है, जो काव्य के मनन, पठन, श्रवण और अभिनय देखने से सामाजिक को प्राप्त होता है।''

उपरोक्त परिभाषओं से स्पष्ट होता है कि, आचार्य मम्मट से लेकर नगेंद्र तक आचार्यों ने रस को इसी रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार 'स्व' पर की भावना से रहित, देश-काल के बंधनों से मुक्त सामाजिक जब एक आनंदमयी स्थिति में पहुँच जाता है, तब उस स्थिति को रसासक्ति कहते हैं। अर्थात किसी सामाजिक का किसी विशिष्ट आनंदमयी घटना से आनंदमयी स्थिति में पहुँच जाना तथा अत्म-विभोर होना ही रस है।

रस की विशेषताएँ :

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि, रस आस्वादरूप है। सहृदय सामाजिक

जिसका रसन या भोग करता है। रस निर्विघ्न तथा अखंड होता है। रस चिन्मय, स्वप्रकाश और अन्य ज्ञानरहित होता है। रस आस्वादन के समय अन्य किसी प्रकार के ज्ञान का स्पर्श नहीं होता। रस लोकोत्तर चमत्कार प्राण है। रस की स्थिति अपने स्वरूप से भिन्न रूप होती है। काव्य के पठन श्रवण से तथा नाटक को दृष्य रूप में देखने से सामाजिक रसानंद प्राप्त करता है। रस ब्रह्मानंद सहोदर होता है।

3.3.2 रस के अंग :

''विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:'' भरतमुनि के इस रस-सूत्र के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। अत: इन्हें ही रस के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। परंतु भरतमुनि के रस सूत्र में रस के केवल तीन ही अंगों का उल्लेख है। इसमें स्थायी भाव का उल्लेख नहीं मिलता। अत: स्थायी भाव को मिलाकर रस के चार अंग माने जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. स्थायीभाव
2. विभाव
3. अनुभाव
4. व्याभिचारी भाव

रस के इन चार अंगों का विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है -

1. स्थायीभाव :

भरतमुनि से लेकर आज तक के आचार्यों द्वारा किए गए विचार विमर्श और निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'सहृदय' सामाजिक के हृदय में जन्मजात वासना रूप में वे अनुभूतियाँ हैं जो स्थायी रूप से विद्यमन रहती हैं। इन अनुभूतियों को वृत्तियाँ भी कहा जाता है। ये वृत्तियाँ और अनुभूतियाँ अन्य अनुभूतियों और वृत्तियों की तुलना में अधिक तीव्र, गतिशील एवं सूक्ष्म होती हैं। इन्हें मूल वृत्ति, मौलिक मनोवेग या स्थायी भाव कहा जाता है।

स्थायी भाव सहृदय के हृदय में उद्दिप्त होकर संचारी भाव की सहाय्यता से रस रूप में परिणत होते हैं। इनका विकास धीरे-धीरे होता है और ये सहृदय के हृदय में देर तक अस्तित्व में रहते हैं। स्थायी भाव मानव चित्त की भावना अथवा संस्कार हैं। स्थायी भाव सहृदय के हृदय में छिपे रहते हैं, जो विभाव और अनुभाव से उद्दिप्त होते हैं। स्थायी भावों की अभिव्यक्ति मनोविकारों और भौतिक या शारीरिक प्रतिक्रियाओं के रूप में होती है।

स्थायी भावों की संख्या को लेकर विद्वानों में विवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार स्थायी भावों की संख्या नौ है, तो कुछ विद्वानों के अनुसार स्थायी भावों की संख्या ग्यारह है। मूलत: स्थायी भाव नौ ही माने जाते हैं लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार वत्सल और भगवत् प्रेम की गनना भी स्थायी भावों में की जाती है। अत: वत्सल और भगवत् प्रेम को जोडकर स्थायी भावों की संख्या ग्यारह मानी जाती है। स्थायी भावों के नामकरण इस प्रकार किये जाते हैं -

1. रति 2. उत्साह 3. हास

4. क्रोध	5. भय	6. जुगुप्सा
7. शोक	8. विस्मय	9. निर्वेद
10. वत्सल	11. भगवत् प्रेम	

सामाजिक में वासना रूप में विद्यमान इन्हीं स्थायी भावों से व्युत्पन्न ग्यारह रस इस प्रकार हैं -

1. श्रृंगार रस	2. वीर रस	3. हास्य रस
4. रौद्र रस	5. भयानक रस	6. बीभत्स रस
7. करूण रस	8. अद्भुत रस	9. शांत रस
10. वात्सल्य रस	11. भक्ति रस	

2. विभाव :

आचार्य भरतमुनि ने अपने 'रससूत्र' में प्रथम विभाव का ही उल्लेख किया है। भरतमुनि के अनुसार विभाव का अर्थ विज्ञान। वे व्यक्ति या पदार्थ जो भावोत्तेजना के मूल कारण हैं, विभाव कहलाते हैं। वाचिक अंगिक तथा सात्त्विक अभिनय के सहारे चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभाजन अर्थात ज्ञापन करनेवाले हेतु कारण अथवा निमित्त को ही विभाव कहा जाता है। विभाव के दो भेद माने जाते हैं -

(अ) आलंबन विभाव
(आ) उद्दिपन विभाव

(अ) आलंबन विभाव :

किसी भी भाव का उद्गम जिस मुख्य भाव या वस्तू के कारण होता है, वह काव्य में आलंबन है। आलंबन विभाव के कारण आश्रम में स्थायी भाव उद्दिप्त हो जाता है। अर्थात स्थायी भाव जिसके विषय में होता है उसे आलंबन विभाव कहा जाता है।

उदा. पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता को देखकर सीता के प्रति राम के हृदय में रति स्थायी भाव जागृत होता है। यहाँ सीता आलंबन है, उसी के कारण तथा उसी के प्रति राम का रति स्थायी भाव जागृत होता है।

आलंबन के कारण जिसके हृदय में स्थायी भाव जागृत होता है, वह आश्रय कहलाता है। प्रस्तुत उदाहरण में राम आश्रय है।

(आ) उद्दिपन विभाव :

आलंबन का रूप एवं उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव कहलाती हैं। आलंबन का रूप और उसके द्वारा की गयी चेष्टाएँ आश्रय के हृदय में उद्बुद्ध स्थायी भाव को इसी प्रकार उद्दीप्त करती हैं, जिस प्रकार लकडियों द्वारा जलाई गयी अग्नी घी डालने से और भी उद्दीप्त हो जाती हैं।

उदा. उपर्युक्त पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता की मोहक सुंदरता, मधुर वाणी, आकर्षक वेषभूषा, केशभूषा,

मुस्कुराना आदि के कारण आश्रय राम के हृदय में वासनारूप में स्थित रति स्थायी भाव अधिक-अधिक उद्‌बुद्‌ध होता है। तथा रति स्थायी भाव को अधिक उत्तेजित करने में तथा पुष्ट करने में सीता की मोहक सुंदरता तथा सजना-संवरना सहायक होता है।

आलंबन के संदर्भ में और एक बात कही जा सकती है कि, कुछ स्थायी भावों के आलंबन निश्चित होते हैं, तो कुछ ऐसे हैं जिनका आलंबन देश कालानुसार कोई भी हो सकता हे।

3. अनुभाव :

'अनु' का अर्थ है 'पीछे' अर्थात स्थायी भाव के पश्चात् प्रकट होनेवाले मनोविकार और आश्रय की चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती है। अनुभाव, स्थायी भाव और विभाव के पश्चात् आश्रय में प्रकट होते हैं। अनुभाव में आश्रय के मानसिक विकार और शारीरिक क्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं। अर्थात जिनसे भाओं का अनुभव होता है, अनुभाव है। आचार्य विश्वनाथ ने आलंबन उद्‌दीपन आदि कारण से उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करनेवाले कार्य को अनुभाव कहा है। अनुभाव वाणी तथा अंग संचालन आदि के कारण आश्रय के हृदय में जागृत होते हैं।

उदा. पुष्पवाटिका प्रसंग में राम आश्रय के हृदय में आलंबन सीता के कारण तथा सीता से प्रकट उद्‌दीपन विभाव के कारण रति स्थायी भाव प्रकट होता है। तथा उत्तरोत्तर उसमें वृद्‌धि होती है। उसके पश्चात् आश्रय राम के द्‌वारा जो चेष्टाएँ या कार्य किए जाएँगे, उन्हें ही अनुभाव संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

विद्‌वानों ने अनुभाव के चार भेद माने हैं -

(क) आंगिक अनुभाव, (ख) वाचिक अनुभाव, (ग) आहार्य, (घ) सात्विक

(क) आंगिक अनुभाव :

इसे कायिक अनुभाव भी कहा जाता है। आश्रय की शरीर संबंधी चेष्टाएँ अंगिक या कायिक अनुभाव कहलाती है। इसके अंतर्गत शारीरिक कृत्रिम चेष्टाओं का समावेश किया जाता है, जैसे - कटाक्ष, भृकुटि भंग, पलकों का उठना, गिरना। नायिका के संदर्भ में होंठ काटना, पैरों से जमिन कुरेदना, पल्लू के साथ खेलना आदि शारीरिक अनुभाव आंगिक या कायिक अनुभाव के अंतर्गत आते हैं।

(ख) वाचिक अनुभाव :

वाणी से संबंधित अनुभाव वाचिक अनुभाव कहलाते हैं। आश्रय की वाणी की मृदुता अथवा उग्रता वाचिक अनुभाव कहलाती है।

(ग) आहार्य :

भावव्यंजक अनुभाओं में आश्रय की विशिष्ट वेशभूषा और साज सज्जा आदि को आहार्य अनुभाव के अंतर्गत रखा जाता है।

(घ) सात्त्विक अनुभाव :

सात्विक अनुभाव ही अयत्नज अनुभाव भी कहलाते हैं। इनकी अभिव्यक्ति सहज अर्थात अपने आप होती है।

इसके लिए आश्रय को कोई क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती। इनका उद्रेक सहज ही होता है। इनकी संख्या आठ मानी जाती है।

1. स्तंभ 2. स्वेद 3. रोमांच 4. स्वरभंग
5. कंप 6. वैवर्ण्य 7. अश्रु 8. प्रलय

1. स्तंभ : प्रेम, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण शरीर की गति का रूक जाना स्तंभ कहलाता है।

2. स्वेद : प्रेम, भय, लज्जा आदि के कारण पसीना आना स्वेद है।

3. रोमांच : प्रेम, हर्ष, भय आदि के कारण शरीर के रोओं का खडा होना रोमांच कहलाता है।

4. स्वरभंग : प्रेम, शोक, भय आदि के कारण वाणी का अवरूद्ध होना स्वरभंग कहलाता है।

5. कंप : प्रेमाधिक्य, भय व क्रोध के कारण शरीर का कंपित होना कंप कहलाता है।

6. वैवर्ण्य : भय, शोक, शंका आदि के कारण मुखमंडल का कांतिहीन होना वैवर्ण्य कहलाता है।

7. अश्रु : हर्षातिरेक या शोक के कारण आश्रुओं का आना।

8. प्रलय : विरह, दु:ख, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण इंद्रियों का चेतनाशून्य होना प्रलय होता है।

4. संचारी भाव तथा व्यभिचारी भाव :

संचारी भाव वे मानोवेग या शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हैं, जो स्थायी भावों की पुष्टि के लिए संचरणशील होते हैं। भरतमुनि ने इसे व्यभिचारीभाव की संज्ञा से अभिहित किया है। किसी एक भाव के साथ इनका नियत संबंध न रहने के कारण इन्हें व्यभिचारी भाव कहा जाता है। इनकी प्रवृत्ति चंचल होती हे। इनकी संचरणशील अर्थात घुमते रहने की प्रवृत्ति इन्हें संचारी कहलाती है।

संचारीभाव आश्रय के हृदय में उद्दीप्त स्थायी भाव के साथ बीच-बीच में प्रकट होकर उस स्थायी भाव को अधिक पुष्ट बनाने में सहायता करते हैं। यह उद्दीप्त होने पर तुरंत लुप्त हो जाते हैं। अर्थात क्षणजीवी होते हैं।

उदा. सागर में लहरें उत्पन्न होती हैं और सागर ही में विलीन हो जाती हैं। वैसे ही स्थायी भाव में संचारी भाव उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं। संचारी भाव स्थायी भाव के पोषक होते हैं।

संचारी भावों की संख्या को लेकर मतभेद हैं। इनकी संख्या समयानुरूप परिवर्तित होती है। फिर भी कुछ विद्वान इनकी संख्या तैंतिस मानते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार संचारीभाव निम्नलिखित हैं -

निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जडता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलसता, अमर्ष, हर्ष, अवहित्य, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, संत्रास, लज्जा, असूया, ग्लानि, धति, विदा, चिंता, दैन्य, उग्रता, चपलता, वितर्क।

निष्कर्श :

रस की निष्पत्ति के लिए स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव इन रस के अंगों का परस्पर संयोग होना अनिवार्य प्रक्रिया है। इस संयोगात्मक प्रक्रिया से ही रस की निष्पत्ति अर्थात सहृदय को रस की अनुभूति हो सकती है। उद्दीपन विभाव के कारण आश्रय के हृदय में रस की गति बढ जाती है और संचारी भावों के कार्यान्वित होने से रस अधिक पुष्ट बन जाता है और सामाजिक अधिक - से - अधिक रसानंद प्राप्त कर सकते हैं।

3.3.3 रस के भेद :

रस अखंड होता है। फलत: अखंड वस्तु के भेदोपभेदों की चर्चा करना उचित नहीं है फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से रस को समझने और समझाने के लिए उसके भेदोपभेदों की चर्चा करना अनिवार्य है। जब हम रस के भेदों की चर्चा करते हैं, तब हमारा तात्पर्य रस भेदों से न होकर स्थायी भावों के भेदों से होता है, जो विभावादि के संयोग से एक नवीन रूप में उपस्थित होते हैं।

जैसे, प्रकाश एक ही होता है, लेकिन उसे समझने के लिए ट्यूब लाईट, बल्ब लाईट, मरक्यूरी लाईट आदि में उसको विभाजित किया जाता है। तथा अन्न (आहारादि) को हलवा, पूरी, सीरा, रोटी, रबडी आदि एक ही अन्न के घटक है अपितु समझने तथा समझाने के लिए उसे विविध भेदों में विभाजित किया जाता है। रस भी प्रकाश तथा अन्न के समान एक ही है अपितु उसके अध्ययन तथा अध्यापन के लिए अर्थात समझने और समझाने के लिए स्थायी भावों के आधार पर विविध भेदों में विभाजित किया जाता है।

★ रस की संख्या :

रसों की संख्या या भेद को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। रस संप्रदाय के प्रवर्तक भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में श्रृंगार, रौद्र, वीर और बिभत्स केवल इन चार रसों का ही प्रमुख रूप से उल्लेख किया है। इन्हीं से क्रमश: हास्य, करूण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार भरतमुनि ने नाटक में केवल आठ रस माने हैं। काव्य के लिए प्रारंभ में रसों की संख्या नौ मानी गयी थी। श्रृंगार, वीर, करूण, हास्य, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स, रौद्र और शांत रस। आगे चलकर हिंदी साहित्य की भक्ति काव्यधारा के प्रवाह से सरसित होकर वात्सल्य और भक्ति रस के रूप में प्रतिष्ठित हुए। फिर भी प्रमुखतया शास्त्रीय विधि से मान्य नौ रस ही है। इन नौ रसों के विश्लेषन के साथ हम वात्सल्य और भक्ति रस का भी विवेचन स्थायी भाव के आधार पर करेंगे।

स्थायी भाव के आधार पर रसों का विवेचन इस प्रकार किया जाता है -

	स्थायी भाव	रस
1.	रति	श्रृंगार रस
2.	उत्साह	वीर रस
3.	हास	हास्य
4.	क्रोध	रौद्र रस

5.	भय	भयानक रस
6.	जुगुप्सा	बीभत्स रस
7.	शोक	करूण रस
8.	विस्मय	अद्‌भुत रस
9.	निर्वेद	शांत रस
10.	वत्सल	वात्सल्य रस
11.	भगवत् प्रेम	भक्ति रस

स्थायी भावों के आधार पर सर्वमान्य इन ग्यारह रसों का सोदाहरण विवेचन निम्न प्रकार किया जाता है -

1. श्रृंगार रस :

'श्रृंगार' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है - 'श्रृंग' और 'आर'। 'श्रृंग' का अर्थ है काम और 'आर' का अर्थ होता है - वृद्‌धि, गति या प्राप्ति। अत: श्रृंगार का अर्थ हुआ - कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्‌धि। विभाव अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व आवस्था में पहुँचा हुआ रति स्थायी भाव श्रृंगार रस में परिणत होता है।

श्रृंगार रस को अधिकांश आचार्यों ने रस - राजत्व की उपाधि दी है। इसका प्रमुख कारण है श्रृंगार भावना की व्यापकता। श्रृंगार का प्रभाव आश्रय पर तुरंत पडता है।

श्रृंगार रस के.....

देवता : विष्णु माने गए हैं।

वर्ण : वर्ण श्याम माना गया है।

स्थायी भाव : रति है।

आलंबन : नायक या नायिका आदि।

उद्‌दीपन : ऋतु - सौंदर्य, चांदनी रात, सरिता तट, उपवन, एकांत स्थान, वियोग में दु:खद बातें आदि हैं।

अनुभाव : देखना, मुस्कुराना, गुनगुनाना, सिमटना, आँखे झुकाना, ओठों का कंपित होना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : औत्सुक्य हर्ष लज्जा जडता ग्लानि उन्माद आदि संचारी माने जाते हैं।

श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं -

(क) संयोग श्रृंगार
(ख) वियोग श्रृंगार

संयोग श्रृंगार को संभोग श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार को विप्रलंब श्रृंगार भी कहा जाता हे।

(क) संयोग (संभोग) श्रृंगार : संयोग श्रृंगार वहाँ होता है, जहाँ नायक और नायिका की मिलन अवस्था का वर्णन होता है। इसमें नायक-नायिका के परस्पर हास-विलास, आलिंगन, स्पर्श, चुंबन आदि का वर्णन होता है। खास कर परस्पर अवलोकन तथा संभाषण को अधिक पसंद किया जाता है। क्योंकि चुंबनादि तो नग्नता की परिभाषा में आ जाते हैं। इसमें नायक या नायिका तथा स्थिति एक दूसरे के भाव के आलंबन हो सकते हैं। उद्दीपन विभाव बाह्य और अंतरिक दोनों प्रकार के होते हैं।

संयोग श्रृंगार के.....

आश्रय : नायक या नायिका कोई भी हो सकते हैं।

आलंबन : आश्रय की तरह आलंबन भी नायक या नायिका में से कोई भी हो सकता है।

उद्दीपन :

बाह्य विभाव के अंतर्गत - चाँदनी रात, उपवन, सरिता तट, एकांत स्थान, वसंत, वर्षा आदि ऋतुएँ, सुगंधित पदार्थ आदि आते हैं।

आंतरिक विभाव के अंतर्गत - आंतरिक उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आलंबन की शारीरिक बनावट, प्रेम से देखना, मुस्कराना, गुनगुनाना आदि बाते आती हैं।

संचारी भाव : इसके संचारी भावों के अंतर्गत हर्ष, लज्जा, औस्तुक्य आदि आते हैं।

उदा. : 1.

''हाथ लक्ष्मण ने तुरंत बढा दिए
और बोले एक परिरंभन प्रिये।
सिमट - सी सहसा गयी प्रिय की प्रिया
एक तिक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : लक्ष्मण है।

आलंबन : उर्मिला है।

उद्दीपन : एकांत स्थान, उर्मिला का कटाक्ष आदि।

अनुभाव : सिमटना।

संचारी भाव : लज्जा, हर्ष आदि।

उदा. : 2.

''ये रेशमी जुल्फे ये शरबती आँखें,
इन्हें देखकर जी रहे हैं सभी।

जो ये आँखे शरम से झुक जाएगी,
सारी बातें यही बस रूक जाएगी,
चुप रहना ये अफसाना,
कोई इनको ना बतलाना।''

(ख) वियोग (विप्रलंब) श्रृंगार : वियोग श्रृंगार वहाँ होता है जहाँ नायक और नायिका में परस्पर उत्कट प्रेम होने पर भी उनका मिलन नहीं हो पाता। इसमें रति स्थायी भाव स्वप्न, चित्र, श्रवण आदि के द्‌वारा व्यक्त होता है। यह संयोग न होने से और भी तीव्र होता है। मिलन के बाद फिर बिछोह के अवसर पर मान, प्रवास आदि विभिन्न दशाओं में प्रकट होता है, वहाँ भी वियोग श्रृंगार होता है। आचार्यों ने वियोग श्रृंगार की दस दशाएँ मानी हैं।

1. अभिलाषा	2. चिंता	3. स्मरण	4. गुणकथन	5. उद्‌वेग
6. उन्माद	7. प्रलाप	8. व्याधि	9. जडता	10. मरण।

वियोग श्रृंगार के.....

आश्रय : नायक या नायिका दोनों में से कोई एक या दोनों हो सकते हैं।

आलंबन : संयोग श्रृंगार की तरह इसके आलंबन भी यथास्थिति नायक या नायिका हो सकते हैं।

उद्‌दीपन : उद्‌दीपन के अंतर्गत दु:खद बातें आ जाती हैं।

अनुभाव : अश्रु बहाना, प्रलय, स्तंभ अनुभाव के अंतर्गत आते हैं।

संचारी भाव : संचारी भावों के अंतर्गत जडता, ग्लानि, उन्माद आदि हैं।

उदा. : 1.

''हा। गुण खानी जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता
लछिमन समुझाये बहु भाँति। पूछत चले लता तरू पाँती
हे खग मृग हे मधुकर सेनी। तुम देखी सीता मृग-नैनी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : आश्रय राम है (सीता के रावन द्‌वारा हरण के पश्चात् राम की आवस्था का चित्रण)

आलंबन : आलंबन सीता है।

उद्‌दीपन : उद्‌दीपन शून्य है।

अनुभाव : सीता का गुण-कथन, सीता के लिए विलाप, पशु-पंछी, पेडों सी सीता का पता पूछना आदि।

संचारी तथा व्याभिचारी : उन्माद, आवेग, चिंता, व्याधि आदि।

उदा. : 2.

''याद तेरी आयेगी,
मुझको बडा सतायेगी,
जीद ये झूठी तेरी मेरी जान लेके जायेगी।
तेरा साथ छुटा, टूटा दिल तो ये जाना,
कितना है मुश्किल, दिल से यार को भूलाना,
दिल का हमेशा से है, दुश्मन जमाना,
गम ये है, तूने मुझे ना पहचाना।''

2. वीर रस :

सहृदय सामाजिकों के हृदय में वासना रूप से विद्यमान उत्साह स्थायी भाव काव्यादि में वर्णित विभावानुभाव और संचारी भावों के संयोग से उद्‌बुद्‌ध होकर रसावस्था में पहुँच कर आस्वाद योग्य बन जाता है, तब वह वीर रस कहलाता है।

वीर रस का....

स्थायी भाव : उत्साह है।

देवता : इंद्र है।

वर्ण : स्वर्ण के समान माना गया है।

आलंबन : नायक, शत्रु याचक, दीन, तीर्थ-स्थान, ऐश्वर्य, साहसिक कार्य, यश आदि हैं।

उद्‌दीपन : शत्रु का प्रभाव, शक्ति, अहंकार, याचक या दीन की दशा, उनके द्‌वारा की गई प्रशंसा, चेष्टा, प्रदर्शन, ललकार आदि है।

अनुभाव : रोमांच आँखों का लाल होना, शत्रुओं के अंगों का संचलन सैन्य का संगठन आदि है।

संचारी भाव : गर्व, उग्रता, धैर्य, तर्क, असूया, दया, आवेग, चपलता, हर्ष, क्षमा आदि है।

वीर रस के चार भेद माने गए हैं....

1. युद्‌धवीर 2. दयावीर 3. धर्मवीर 4. दानवीर

उदा. : 1.

''कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया
अरे समझकर जिनकों अपना था अपनाया

तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि
रण गह यज्ञ पुरोहिन ओ किलात ओ आकुली।''

प्रस्तुत उदाहरण में .....

आश्रय : मनु है।

आलंबन : किलात तथा अकुली है।

उद्दीपन : किलात तथा अकुली द्वारा उत्पात मचाना।

अनुभाव : मनु का ललकारना, युद्ध करना।

संचारीभाव : गर्व, आवेग, चपलता आदि।

उदा. : 2.

''यह चूके हैं सितम हम बहुत गैरों के,
अब करेंगे हर एक वार का सामना,
झूक सकेगा ना अब सरफरोशों का सर,
चाहे हो खूनी तलवार का सामना,
सर पे बांधे कफन हम तो हँसते हुए,
मौत को भी गले से लगा जाएँगे।

3. हास्य रस :

रूप, आकार, वाणी, वेश और कार्य आदि के विकृत हो जाने से हास्य की उत्पत्ति होती है।

हास्य रस का स्थायी भाव : हास है।

इसके देवता : प्रथम शंकर के गण माने जाते हैं।

इस रस का वर्ण : स्वेत है।

आश्रय : हास्य रस का आश्रय व्यक्ति विशेष न होकर प्राय: श्रोता, पाठक, दर्शक सभी हो जाते हैं।

आलंबन : विकृत रूप आकार, वेशभूषा, विचित्र अनर्गल वचन, विलक्षण चेष्टाएँ, व्यंग्य, मूर्खता के कार्य, निर्लज्जता आदि।

उद्दीपन : हास्यजनक वस्तु या व्यक्ति की चेष्टाएँ, विचित्र अंगभंगिमा, क्रियाकलाप आदि।

अनुभाव : आँखे और मुख का विकसित होना, खिलखिलाना, व्यंग्य वाक्य कहना, ओठ नासिका और कपोल का स्फुरित होना, नेत्र बंद होना, मुख पर प्रसन्नताजनक दीप्ति आदि।

संचारी भाव : रोमांच, कंप, हर्ष, स्वेद, चंचलता, आलस्य, निद्रा, चलपता, गर्व आदि।

भावों के आधार पर हास्य के छ: भेद माने गए हैं.....

1. स्मित 2. हसित 3. विहसित
4. अवहासित 5. अपहसित 6. अतिहसित

उदा. : 1.

''मगर एक 'इंटर' में देखा तो एक,
चढा कोई साहब का रचा करके भेख।
बदन पर थी 'पॉलिश' वे जापान की,
औ पतलुन 'गुधडी' के बाजार की।
शक्ल और सूरत की क्या बात थी,
उसे देख भैस की माँ मात थी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : दर्शक तथा पाठक है।

आलंबन : विचित्र पोशाख पहना हुआ आदमी।

उद्दीपन : बदन पर जापान की पॉलिश, गुधडी की पतलुन, भैस से भी बद्तर शक्ल-सूरत।

अनुभाव : खिलखिलाना, हाथ दिखाना, आँखों से पाणी आना, आँखो का फैल जाना, कपोल आरक्त होना आदि।

संचारी भाव : चपलता, चंचलता, कंपन, आवेग, हर्ष आदि।

उदा. : 2.

''एक दिन दादाजी को
याद आयी अपनी जवानी
दादी से बोले ए मेरे दिलबर जानी
कल हम पुराने दिनों की तरह जिएंगे
गुलाब लेकर तुम्हारा नदिया के किनारे इंतजार करेंगे
अगले दिन दादाजी ने शाम तक किया इंतजार
पर ना आयी जश्न-ए-बहार
दादाजी झल्लाएं

तुम कैसी प्रेमिका हो आयी नहीं
दिन भर इंतजार करके
मेरे घुटने का बज गया बाजा
दादीजी शरमाकर बोली
क्या करूँ, माँ ने आने नहीं दिया मेरे राजा।''

4. रौद्र रस :

शत्रु की अपमानजनित चेष्टाओं से तथा गुरू निंदा देश धर्म का अपकार और अपमान होने पर सामाजिक में वासना रूप में क्रोध स्थायी भाव जग्रत होता है। विभावानुभाव तथा संचारी भावों के उद्दीपन से रौद्र रस का उदय होता है।

देवता : रूद्र माने जाते हैं।

वर्ण : रक्त के समान माना जाता है।

स्थायी भाव : क्रोध है।

आलंबन : शत्रु, अनुचित बात कहनेवाला, अपराधी, देशद्रोही, समाज द्रोही, दुराचारी व्यक्ति आदि।

उद्दीपन : अपमान और निंदा से भरे वचन, विरोधी दल द्वारा किए अनुचित कार्य, आँखे दिखाना, चिढाना आदि।

अनुभाव : गर्व आवेग, चपलता, अमर्ष, कंप, उग्रता आदि।

उदा. : 1.

''सुनता लखन के वचन कठोरा। परशु सुधारि धेरउ कर धारा।
अब जनि देउ दोष मोहि लोगू। कटुवादी बालक वध जोगू।
राम वचन सुनि कघुक जुडाने। कहि कघु लखन बहुरि मुस्काने।
हँसत देख नख-शिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड पापी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : परशुराम हे।

आलंबन : लक्ष्मण है।

उद्दीपन : लक्ष्मण के कठोर वचन तथा मुस्कुराना।

अनुभाव : परशु हाथ में लेना, लक्ष्मण को पापी कहना, वध करने की बात कहना।

संचारी भाव : व्यग्रता, चपलता, आवेग आदि।

उदा. : 2.

''साक्षी रहे संसार, करता हूँ प्रतिज्ञा पार्थ मैं।
पूरा करूंगा कार्य सब, कथनानुसार यथार्थ मैं।
जो एक बालक को कपट से मार हँसते हैं अभी।
वे शत्रु सत्वर शोक-सागर मग्न दिखेंगे सभी।''

5. भयानक रस :

भयानक अनिष्ठकारी दृष्य देखने, सुनने या स्मरण करने से सामाजिक में वासना रूप में स्थित 'भय' स्थायीभाव आलंबन, उद्दीपन के कारण उद्बुद्ध होकर संचारी भावों की मदद से तीव्र होता है। सामाजिक रसासक्त होकर 'भयानक रस' की परिणती होती है।

इस रस के.....

देवता : भूतपिशाच तथा कालदेव माने जाते हैं।

रंग : भयानक रस का वर्ण कृष्ण माना गया है।

स्थायी भाव : भय है।

आलंबन : भयानक व्यक्ति या वस्तु, सिंह, व्याघ्र, हिंसक जंतु, सर्प, आग, नदी की बाढ, भूत, प्रेत की आशंका, एकांत भयानक स्थान, श्मशान, निर्जन स्थान आदि।

उद्दीपन : आलंबन की भयानक चेष्टाएँ और व्यवहार, निर्जनता, उग्रध्वनि, सिंह की दहाड, व्याघ्र की गर्जना, अकेलापन, सर्प का रेंगना या जीभ निकालना, सागर की उँची लहरें, नदी का तीव्र बहाव, आग से निकलेनवाली लपटे, अनिष्ठ की आशंका आदि।

अनुभाव : काँपना, पसीना आ जाना, रोमांचित हो जाना, आँखे और स्वर का विकृत हो जाना, मुखमंउल का रंग उड जाना, भागने का उपक्रम करना, मूर्छित हो जाना, गिडगिडाना, चिल्लाना आदि।

संचारी भाव : शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चिंता, त्रास, चपलता, मरण, जुगुप्सा आदि इसके स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं।

उदा. : 1.

''एक ओर अजगरहि लखि, एक ओर मृगराइ।
विकल बटोही बीच ही, परयौ मूर्च्छा खाई।।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : बटोही (प्रवाशी) है।

आलंबन : अजगर और शेर है।

स्थायी भाव : भय है।

उद्दीपन : अजगर का जिव्हा निकालना, शेर का दहाडना (काव्य में नहीं है।) आदि है।

अनुभाव : बटोही का मूर्च्छित होना।

संचारी भाव : कंपन, चिंता, दैन्य, आवेग, त्रास आदि।

उदा. : 2.

''झहरात भहरात दावानल आयौ।
घेरि बहुँ ओर करि सोर अन्दोर
उद्यान धरनि आकास चहुँ पास छावै।''

6. बीभत्स रस :

घृणित वस्तुओं को देखकर अथवा उनका वर्णन सुनकर सामाजिकों में वासनागत रूप में विद्यमान 'जुगुप्सा' स्थायी भाव उद्भुत होता है, जो संबंधित विभावानुभावों के संयोग से परिपक्व आवस्था में पहुँचकर तथा संचारी भावों के संचरण से पुष्ट होकर 'बीभत्स रस' में परिणत हो जाता है।

बीभत्स रस के....

देवता : महाकाल माने जाते हैं।

वर्ण : नीला है।

स्थायी भाव : जुगुप्सा है।

आलंबन : घृणोत्पादक प्राणी या पदार्थ, रक्त, मांस, स्मशान मैली कुचैली दुर्गंधयुक्त वेशभूषा सडी गली तथा दुर्गंधयुक्त वस्तुएँ आदि आलंबन हैं। (स्थान : मछली बाजार, कसाई खाना, श्मशान घाट आदि।)

उद्दीपन : घृणोत्पादक वस्तुओं में कीडे पडना, किडों का कुलबुलाना, मक्खियों का भिनभिनाना, सडते मांस पिंडों को गीद्ध, कौओं, कुत्तों आदि द्वारा नोचना-खसोटना, घृणोत्पादक वस्तुओं की चर्चा आदि।

अनुभाव : मुँह फेरना, नाक सिकोडना, थूँकना, छी-छी करना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, आवेग, जडता, चिंता, व्याधि, अपस्मार आदि संचारी कहलाते हैं।

उदा. : 1.

''सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत,
खींचत जीभहि सियार अतिहि आनन्द उरधारत।
गिद्ध जांघ को खोदि खोदि कै मांस उपारत,
श्वान अंगुरिन काटि-काटि कै खात विदारत।
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद भरयो सबको हियो,
मनु ब्रह्म भोज जिजमान कोउ आज भिखारिन दियो।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : राजा हरिश्चंद्र, श्रोता या पाठक है।

आलंबन : श्मशान का दृष्य, मरे हुए जानवर को जानवरों या पंछियों द्वारा नोच-नोचकर खाने का दृष्य।

स्थायीभाव : जुगुप्सा है।

उद्दीपन : काक, गिद्ध, चील आदि पंछियों तथा कुत्ते और सियार द्वारा मांस नोचना, उखाडना, खाना आदि।

अनुभाव : मितलाना, थूंकना, नाक सिकोडना आदि।

संचारी भाव : मोह स्मृति ग्लानी आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 2.

''कई कब्रों उठ बैठी हैं लाशें
भभकती गंध ये आई वो आई
भटकते श्वान आवारा कई जो
जुबां भुस-काटने को लपलपाई।''

7. करूण रस :

करूण रस अत्यंत प्रभावशाली है। इसमें सभी को द्रवित करने की क्षमता होती है। भवभूति ने इसे एकमात्र रस माना है। किसी आत्मीय तथा प्रिय व्यक्ति के साथ कुछ बुरा घटित होने पर या उसकी मृत्यु होने पर सामाजिको में वासना रूप में विद्यमान शोक स्थायी भाव विभाव तथा अनुभाव के संयोग से उद्दीप्त होकर संचारी भावों के योग से पुष्ट होता है और करूण रस की परिणती होती है।

करुण रस के.....

देवता : यमराज माने जाते हैं।

वर्ण : कपोत के समान माना जाता है।

स्थायी भाव : शोक है।

आलंबन : प्रिय व्यक्ति, प्राणी या वस्तु का अनिष्ठ, हानि या विनाश, वियोग आदि।

उद्दीपन : प्रिय का वियोग, उसके गुण का कथन तथा स्मरण, प्रियजन का शव दर्शन, चित्र का दर्शन, प्रिय के गुणों का श्रवण आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : रूदन, उच्छवास, प्रलाप, भूमि पतन, मूर्च्छा, कंप, दैव निंदा, शरीर का शिथिल होना, छाती पीटना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानी, मोह, स्मृति, चिंता, विषाद, अन्माद, दैन्य, व्याध, मरण आदि संचारी हैं।

उदा. : 1.

''पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को... भूख मिटाने को
मुह फटी पुरानी झोली को फैलाए...
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : पाठक, श्रोता तथा दर्शक ।

आलंबन : दैन्य आवस्था में भीख मांगता भिखारी।

उद्दीपन : भूख के कारण पीठ से चीपका हुआ पेट, फटी-पुराणी झोली, भिखारी का करूण चेहरा, उसकी करुणिक पुकार आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : उच्छवास, दैव निंदा, दया, कंप आदि अनुभाव पाए जाते हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानी, दैन्य, चिंता, व्याधि, विषाद आदि संचारी भाव परिलक्षित होते हैं।

उदा. : 2.

''साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते

और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढाये
भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूँट ऑसुगों के पीकर रह जाते।''

8. अद्‌भुत रस :

वस्तु-वैचित्र्य कौ देखकर सामाजिकों में वासना रूप में स्थित विस्मय स्थायी भाव उत्पन्न होता है। विभाव और आनुभाव के संयोग से तथा संचारी भावों से पुष्टि पाकर आश्चर्य के संसार से अद्‌भुत रस का उदय होता है। आश्चर्यजनक व्यक्तियों, वस्तुओं, विचित्र दृश्यों एवं अलौकिक वस्तु या घटना के द्‌वारा अद्‌भुत रस की उत्पत्ति होती है।

इस रस के....

देवता : गंधर्व माने जाते हैं।

वर्ण : अद्‌भुत रस का वर्ण पीत है।

स्थायी भाव : विस्मय है।

आलंबन : अलौकिक व्यक्ति, वस्तु या घटना, विचित्र दृश्य, आकस्मिक मनोरथ सिद्‌धि आदि आलंबन माने गए है।

उद्‌दीपन : अलौकिक के गुणों का श्रवण, अलौकिक के विभिन्न रूप, आश्चर्यजनक वस्तु का विवेचन आदि इसके उद्‌दीपन के अंतर्गत आते हैं।

अनुभाव : रोमांच, स्तब्ध होना, अवाक् हो जाना, स्तंभ, स्वेद, दाँतों तले अंगुली दबाना, नेत्र विस्फारण आदि अनुभाव माने जाते हैं।

संचारी भाव : भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, प्रलाप, वितर्क, आवेग, स्मृति, संभ्रम आदि संचारी भाव माने जाते हैं।

उदा. : 1.

''अंबर तो अंबार अमर कियो बंसीधर।
भिष्म, करण, द्रोण शोभार्य निहारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है।
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : भिष्म, करण, द्रोण तथा अन्य दरबारी हैं।

आलंबन : सारियों के अंबार आलंबन प्रतित होता है।

उद्दीपन : निरंतर बढते सारियों के अंबार।

अनुभाव : शोभा निहारना, भ्रमित होना, आश्चर्य चकित होना, विस्मित होना।

संचारी भाव : भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, आवेग, भ्रम आदि संचारी भाव परिलक्षित होते हैं।

उदा. : 2.

''क्षण मार दिया कर कोडे से
रण किया उतरकर घोडे से।
राणा रण-कौशल दिखा दिया
चढ गया उतरकर घोडे से।''

9. शांत रस :

ये रस उदात्त वृत्तियों का प्रेरक है। श्रृंगार, वीर और शांत रसों में से महाकाव्य में प्रधान या अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित होना आवश्यक होता है। अत: श्रृंगार-वीर रसों के साथ ही शांत रस की गणना भी प्रधान रसों में की जाती है। संसार की असारता और क्षणभंगुरता के वशिभूत सामाजिक में स्थित वासना रूप में विद्यमान निर्वेद स्थायी भाव विभावानुभाव के संयोग से उद्यपित होता है और संचारी भावों की मदद से पुष्ट होकर शांत रस में परिणत होता है।

इस रस के.....

देवता : विष्णु माने जाते हैं।

वर्ण कुंदन पुष्प व चंद्रमा के समान शुक्ल माना जाता है।

स्थायी भाव : निर्वेद है।

आलंबन : संसार की असारता और क्षणभंगुरता, ज्ञात संसार का परम चिंतन।

उद्दीपन : सत्संग, तीर्थस्थान, मृतक, साधुसंतों के आश्रम, सिद्ध महात्माओं का दर्शन एवं सत्संग शास्त्र परिशीलन आदि।

अनुभाव : रोमांच, अश्रु, पश्चात्ताप, ग्लानि, संन्यास ग्रहण, गृहत्याग, संसार की असारता का बखान आदि।

संचारी भाव : निर्वेद, हर्ष, स्मरण, बोध, मति, धृति आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 1.

''जीव जहाँ खत्म हो जाता
उठते - गिरते

जीवन - पथ पर
चलते - चलते
पथिक पहुँचकर
इसी जीवन के चौराहे पर
क्षणभर रूककर
सूनी दृष्टि डाल सम्मुख जब पीछे
अपने नयन घुमाता
जीवन वहाँ खत्म हो जाता।''

प्रस्तुत उदाहरण में.....

आश्रय : कवि का हृदय है।

आलंबन : पथिक का जीवन है।

उद्दीपन : जीवन पथ, चौराहा, सूनी दृष्टि आदि उद्दीपन है।

अनुभाव : चलते - चलते रूकना, पीछे मुड-मुडकर देखना अनुभाव हैं ।

संचारी भाव : जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान, दृष्टि में सुनापन, मृत्यु बोध आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 2.

''भाग रहा हू भार देख,
तू मेरी ओर निहार देख,
मैं त्याग चला निस्सार देख,
अटकेगा मेरा कौन काम,
ओ क्षणभंगुर भव राम राम।''

10. वात्सल्य रस :

संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने इसे अलग रस न मानकर श्रृंगार के भितर ही परिगणित किया हे। लेकिन भोज, भानुदत्त, विश्वनाथ इसे स्वतंत्र रस मानते हैं। ''बालक या पशु पंछियों के बच्चों का उछलना, कुदना देखकर बुजुर्ग तथा बडे सामाजिकों में वासनागत् वत्सल स्थायी भाव विभाव अनुभाव के संयोग से तथा संचारी भावों के पुष्ट होने से वात्सल्य रस उद्बुद्ध होता है।'' बच्चों की तुतली बोली, घर के आंगन में उनके द्वारा भरी किलकारियाँ, अबोधजन्य कार्य वात्सल्य रस के उत्पादक कारण हैं। इस रस को नौ रसों में स्थान न होने के कारण इसके कोई देवता या वर्ण विद्वानों ने निश्चित नहीं किया है।

इस रस का....

स्थायी भाव : वत्सल है।

आलंबन : बालक या शिशु, पालतु पशु पंछियों के छोटे बच्चे।

उद्दीपन : बच्चे की भोली भाली चेष्टाएँ, तुतली बोली, अबोध जिज्ञासाएँ, घुटनों के बल चलना, रेंगना, हठ करना, किलकारियाँ भरना, खेलना, कूदना, गिर पडना आदि।

अनुभाव : आलिंगन, अंगस्पर्श, सिर चूमना, निहारना, हँसना, पुलकित होना, झुलाना आदि।

संचारी भाव : हर्ष, औत्सुक्य, मति, विषाद, चिंता, जडता, शंका, मोह आदि।

उदा. : 1.

''जसोदा हरि पालने झुलावे।
हालरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै॥
मेरे लाल की आउ निंदरिया काहे न आति सुलावै।
तू काहे न बेगी सो आवै ताको कान्ह बुलावै॥''

प्रस्तुत उदाहरण में .....

आश्रय : यशोदा है।

आलंबन : कृष्ण का बाल रूप।

उद्दीपन : बाल कृष्ण की क्रियाएँ।

अनुभाव : यशोदा का हिलना, मल्हाना, गाना आदि।

संचारी भाव : शंका, हर्ष, चंचलता, चपलता आदि।

उदा. : 2.

''चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमकी-ठुमकी पग धरनि रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौ चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहिं कौ आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं लाँघत सुर-मुनि सोच करावै।

11. भक्ति रस :

पंडित जगन्नाथ ने भक्ति रस को स्वतंत्र रस माना है। भक्ति का स्थायी भाव देवादिविषयक रति है। भक्त के हृदय में स्थित तन्मयता रसोत्कर्ष के लिए अपेक्षित होती है। वात्सल्य रस की तरह इस रस का अंतर्भाव भी नौ रसों में नहीं किया जाता। अत: इसके भी देवता और वर्ण निश्चित नहीं किये हैं।

इस रस का.....

स्थायी भाव : देवरति या भगवत् प्रेम है।

आलंबन : ईश्वर या उसका कोई रूप।

उद्दीपन : पुराणादि का श्रवण।

अनुभाव : रोमांच, अनन्यासक्तिजनित अश्रु।

संचारी भाव : हर्ष, दैन्य आदि।

उदा. : 1.

''तू दयालू दीन हौं तू दानी हौं भिखारी।
हौ प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो।
मों समानआरत नहिं आरति हर तोसो।।''

प्रस्तुत उदाहरण में.....

आश्रय : ईश्वर के प्रति अनुराग है।

आलंबन : राम या ईश्वर है।

उद्दीपन : ईश्वर की दानशीलता दयालुता करूणा आदि।

अनुभाव : गुण कथन, विनय।

संचारी भाव : दैन्य, हर्ष, गर्व आदि।

उदा. : 2.

''बसौ मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहिनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भक्तवत्सल गोपाल।''

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

बहुविकल्पीय प्रश्न :

1. श्रृंगार रस को ..... की उपाधि दी गयी है।

   (1. रस राज 2. रस शिरोमणी 3. उत्कृष्ट रस 4. दीव्य रस)

2. भरतमुनि ने अपने रस सूत्र में …… रसांगों की गणना की है।
(1. चार 2. तीन 3. दोन 4. पाँच)

3. रस शब्द का प्रयोग …… तत्त्व के रूप में माना जाता है।
(1. गौण तत्त्व 2. न्यून तत्त्व 3. सर्वोत्कृष्ठ तत्त्व 4. प्राण तत्त्व)

4. रस सिद्धांत के प्रवर्तक …… माने जाते हैं।
(1. आचार्य दंडी 2. आचार्य वामण 3. भवभूति 4. आचार्य भरतमुनि)

5. भरतमुनि ने अपने रस सूत्र में रस के चार अंगों में से …… अंग का उल्लेख नहीं किया।
(1. विभाव 2. अनुभाव 3. व्याभिचारी भाव 4. स्थायीभाव)

6. विद्वानों ने स्थायी भावों की संख्या …… मानी है।
(1. चार 2. पाँच 3. आठ 4. नौ)

7. बीभत्स रस का स्थायी भाव …… है।
(1. निर्वेद 2. जुगुप्सा 3. शोक 4. वत्सल)

8. भरतमुनि के अनुसार विभाव शब्द का अर्थ …… है।
(1. भाव रहित 2. उत्तेजक 3. विज्ञान 4. शास्त्र)

9. विद्वानों ने अनुभाव के …… भेद माने हैं।
(1. चार 2. पाँच 3. तीन 4. सात)

10. संचारी भावों को भरतमुनि ने …… नाम से अभिहित किया है।
(1. अलौकिक भाव 2. सहज भाव 3. व्यभिचारी भाव 4. अनुभाव)

11. संचारी भावों की संख्या …… मानी जाती है।
(1. तेईस 2. तेरा 3. तैंतिस 4. तैतालिस)

12. श्रृंगार रस का स्थायी भाव …… है।
(1. उत्साह 2. हास 3. भय 4. रति)

13. वीर रस के देवता …… माने जाते हैं।
(1. इंद्र 2. शिव 3. राम 4. कृष्ण)

14. हास्य रस का वर्ण …… माना जाता है।
(1. श्याम 2. भूरा 3. स्वेत 4. नीला)

15. गुरू निंदा सुनने पर …… रस का उदय होता है।
(1. वीर 2. करूण 3. भयानक 4. रौद्र)

16. भवभूति ने ..... रस को एकमात्र रस माना है।
(1. श्रृंगार 2. वीर 3. करूण 4. शांत)

17. वात्सल्य रस का स्थायी भाव ..... है।
(1. रति 2. वत्सल 3. उत्साह 4. हास्य)

18. भक्ति रस का स्थायी भाव ..... है।
(1. भगवत् प्रेम 2. रति 3. जुगुप्सा 4. निर्वेद)

19. शांत रस का स्थायी भाव ..... है।
(1. वत्सल 2. हास 3. निर्वेद 4. उत्साह)

20. विस्मय ..... रस का स्थायी भाव है।
(1. रौद्र 2. करूण 3. अद्‌भुत 4. श्रृंगार)

लघुत्तरी प्रश्न :

1. वीर रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
2. श्रृंगार रस के लक्षणों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. बीभत्स रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. शांत रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
5. 'विभाव' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. रस के अंगों का सामान्य परिचय दीजिए।
2. रस के भेदों का विवेचन कीजिए।
3. श्रृंगार रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. वात्सल्य रस और भक्ति रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
5. वीर रस और रौद्र रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली :

1. **चिन्मय** - चेतना रूप
2. **अभिव्यक्त करना** - प्रकट करना
3. **सानुराग अवलोकन** - प्रेमपूर्वक देखना
4. **परिगणित करना** - गिनना समाविष्ट करना

5. **सहृदय सामाजिक** - पाठक, वाचक, श्रोता या दर्शक

6. **निष्पन्न होना** - अभिव्यक्त होना, परिणत होना

7. **विभावन करना** - उद्‌बोधित करना, आस्वाद योग्य बनाना

8. **आलंबन विभाव** - स्थायी भाव के प्रकट होने का मुख्य कारण

9. **उद्‌दीपन विभाव** - भावों को उद्‌दीप्त या उत्तेजित करने वाले कारण

10. **विवेचन** - स्पष्टीकरण

11. **पुष्प वाटिका** - फूलों का बगीचा

3.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. (1)	2. (2)	3. (3)	4. (4)	5. (4)
6. (4)	7. (2)	8. (3)	9. (1)	10. (3)
11. (3)	12. (4)	13. (1)	14. (3)	15. (4)
16. (3)	17. (2)	18. (1)	19. (3)	20. (3)

3.7 सारांश :

1. भरतमुनि ने 'रस' तथा रस के स्वरूप पर सर्वप्रथम विचार किया। अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में उन्होंने न केवल रस का परिचय दिया अपितु रस को परिभाषित कर रस के अंगों का भी परिचय दिया है। आचार्य भरतमुनि के पश्चात, आचार्य भरतमुनि, अभिनव गुप्त, आचार्य विश्वनाथ, आचार्य मम्मट, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. दशरथ ओझा तथा डॉ. भगिरथ मिश्र आदि परवर्ती आचार्यों ने रस को परिभाषित करने का प्रयास किया।

2. भरतमुनि ने अपने रस सूत्र में विभाव, अनुभाव व व्याभिचारी या संचारी भावों का ही उल्लेख किया है। उन्होंने स्थायी भाव को रस सूत्र में स्थान नहीं दिया। अत: स्थायी भाव को जोडकर रस के चार अंग माने जाते हैं।

3. रस की संख्या को लेकर विद्‌वानों में मतभेद है। सामाजिक में वासनागत रूप में नौ स्थायी भाव माने जाते हैं, अत: इसी के आधार पर रसों की संख्या भी नौ ही मानी जाती है। भरतमुनि ने शांत रस छोडकर बाकी आठ रसों को मान्यता दी है। तो उद्‌भट ने उनमें शांत रस को जोडकर रसों की संख्या नौ बना दी। आचार्य विश्वनाथ ने इसमें और एक रस 'वात्सल्य' का समावेश किया तो भक्ति के प्रभाव के कारण 'भक्तिरस' भी इन रसों में समाविष्ठ किया गया। अत: रसों की कुल संख्या ग्यारह मानी गयी। रसों के ये भेद सर्व सम्मत हैं।

3.8 क्षेत्रीय कार्य :

1. निराला की कविताओं में प्रयुक्त रसों को पहचानिए।
2. पुराने हिंदी फिल्मी गीतों में रसों की खोज कीजिए।
3. सूर तथा तुलसी के काव्य में वात्सल्य तथा भक्तिरस का आस्वादन कीजिए।

4. कुरुक्षेत्र तथा साकेत महाकाव्य में 'वीररस' तथा श्रृंगार रस की खोज कीजिए।

3.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1.	पाश्चात्य साहित्य सिद्धांत और विविध वाद	:	डॉ. ज्ञा. का. गायकवाड
2.	काव्यशास्त्र	:	डॉ. भगीरथ मिश्र
3.	काव्याशास्त्र	:	शंभुनाथ पांडेय
4.	भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा	:	नगेंद्र
5.	भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान	:	जगदीश प्रसाद कौशिक
6.	भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत	:	कृष्णदेव धारी
7.	भारतीय एवं पाश्चात्त्य काव्य सिद्धांत	:	गणपती चंद्र गुप्त

○●○

सत्र V : इकाई 4

अलंकार (शब्दालंकार, अर्थालंकार)

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय-विवेचन

4.3.1 अलंकार

4.3.1.1 अलंकार स्वरूप

4.3.1.2 अलंकार भेद

4.3.1.3 शब्दालंकार

4.3.1.3.1 अनुप्रास

4.3.1.3.2 श्लेष

4.3.1.3.3 वक्रोक्ति

4.3.1.3.4 यमक

4.3.1.4 अर्थालंकार

4.3.1.4.1 उपमा

4.3.1.4.2 रूपक

4.3.1.4.3 दृष्टान्त

4.3.1.4.4 अर्थान्तरन्यास

4.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई पढने के बाद आप,

1. अलंकारों के स्वरूप से परिचित होंगे।

2. अलंकारों के भेद समझ पाएँगे।

3. शब्दालंकार और अर्थालंकार के बीच का अंतर समझ पाएँगे।

4. हिंदी के प्रमुख शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से परिचित होंगे।

5. अलंकारों के लक्षण और उदाहरण समझ पाएँगे।

4.2 प्रस्तावना :

हिंदी काव्यशास्त्र में अलंकारों के सभी भेदों-उपभेदों का वर्णन किया गया है। हमारे पाठ्यक्रम में चार शब्दालंकारों और चार अर्थालंकारों का समावेश किया गया है। अलंकार किसे कहते हैं? अलंकारों के कितने भेद हैं? शब्दालंकार और अर्थालंकार में क्या भेद है? पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के लक्षण और उदाहरण कौन-से हैं आदि प्रश्नों के संदर्भ में हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

4.3 विषय विवेचन :

अब हम अलंकारों का स्वरूप, भेद और पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के लक्षण और उदाहरणों पर विचार करेंगे।

4.3.1 अलंकार :

अब हम अलंकारों का स्वरूप, भेद और पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के लक्षण और उदाहरणों पर विचार करेंगे।

4.3.1.1 अलंकार-स्वरूप :

मानव समाज सौंदर्योपासक है। उसकी इस प्रवृत्ति ने ही अलंकारों को जन्म दिया है। शरीर की सुंदरता को बढाने के लिए जिस प्रकार मनुष्य ने भिन्न-भिन्न प्रकार के अभूषणों का प्रयोग किया है उसी प्रकार उसने भाषा को सुंदर बनाने के लिए अलंकारों की योजना की है। 'अलंकार' शब्द की रचना 'अलं' तथा 'कृ' धातु से हुई है। इस अलंकार शब्द का अर्थ है 'सजावट'। 'अलंकार' शब्द में 'अलं' और 'कार' दो शब्द है। 'अलं' का अर्थ है भूषण अर्थात् जो अलंकृत करे, वह अलंकार है। अलंकार काव्य को आभूषित करनेवाला उपकरण है चाहे वह गद्य हो, या पद्य। दोनों में अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है। सामान्य बात अलंकारों से विभूषित होकर एक विशेष मनोहरता से संपन्न हो जाती है। अत: अलंकार सामान्य कथन न होकर चमत्कारपूर्ण उक्ति है।

4.3.1.2 अलंकार भेद :

शब्द और अर्थ को चमत्कृत करनेवाले अलंकार तीन प्रकार के होते हैं - शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।

1) **शब्दालंकार :** शब्दालंकार में केवल शब्दगत सौंदर्य का चमत्कार होता है। केवल विशेष शब्दों के कारण काव्य में सुंदरता आती है। यदि शब्द विशेष के स्थान पर उसके ही अर्थवाले दूसरे शब्द रख दिए जाए तो बहुधा वह सौंदर्य जाता रहता है।

2) **अर्थालंकार :** जो अलंकार काव्य में अर्थ के द्‌वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं, उनको अर्थालंकार कहते हैं।

3) **उभयालंकार :** जो अलंकार शब्द और अर्थ दोनों के आश्रित रहकर दोनों को चमत्कृत करते हैं वे उभयालंकार कहलाते हैं।

पाठ्यक्रम में चार शब्दालंकार और चार अर्थालंकार हैं। अब हम क्रमश: इन अलंकारों के लक्षण और उदाहरण देखेंगे।

4.3.1.3 शब्दालंकार :

4.3.1.3.1 अनुप्रास :

लक्षण - जब एक ही वर्ण (अक्षर) की एक ही क्रम से आवृत्ति होती है, तब अनुप्रास अलंकार होता है।

(अनुप्रास में केवल व्यंजन वर्णो की समानता या आवृत्ति अपेक्षित है, स्वरों की समानता अपेक्षित नहीं है। स्वर के विषम होने पर भी अनुप्रास अलंकार बना रहता है।)

उदा. 1) *''चारू चंद्र की चंचल किरणे*
खेल रही थी जल-थल में।''

(यहाँ पर 'च' वर्ण की आवृत्ति हुई है और 'च' वर्ण शब्द का पहला वर्ण है। इसी तरह 'ल' वर्ण चार बार प्रयुक्त हुआ है और शब्द के अंत में प्रयुक्त हुआ है।)

उदा. 2) *''कल-कल कोमल कुसुम कुंज पर*
मधु बरसानेवाला कौन?''

(यहाँ पर 'क' वर्ण की आवृत्ति हुई है। सभी शब्दों में स्वर भिन्न हैं किन्तु व्यंजन (वर्ण) समान हैं। दूसरे यह व्यंजन प्रत्येक शब्द का पहला अक्षर है।

4.3.1.3.2 श्लेष :

लक्षण - जहाँ किसी शब्द के एक बार प्रयुक्त होने पर भी एक से अधिक अर्थ ध्वनित हो, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।

('श्लेष' शब्द 'श्लिष' धातु से बना है - इसका शाब्दिक अर्थ है - 'चिपका हुआ'। आशय यह है कि जहाँ एक शब्द में अनेक अर्थ चिपके होते है, वहाँ श्लेष होता है।)

उदा. 1) *''रहिमन पानी राखिए - बिन पानी सब सून*
पानी गए न उबरे, मोती मानुस चून।''

(इस उदाहरण में 'पानी' शब्द 'श्लिष्ट' है और इसके तीन अर्थ होते हैं। चमक (मोती के पक्ष में), प्रतिष्ठा (मनुष्य के पक्ष में) तथा जल (चूने के पक्ष में))

उदा. 2) *''प्रियतम बतला दो लाल मेरा कहाँ है?''*

(यहाँ 'लाल' शब्द के दो अर्थ निकलते हैं - एक अर्थ है 'पुत्र' और दूसरा अर्थ है - लाल नामक रत्न।)

4.3.1.3.3 वक्रोक्ति :

लक्षण - जहाँ किसी उक्ति में वक्ता के अभिप्रेत आशय से भिन्न अर्थ की कल्पना की जाय, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

(कभी किसी शब्द के श्लेष से कई अर्थ होने के कारण दूसरा अर्थ निकाला जाता है और कभी कहे हुए वाक्य का कण्ठ की ध्वनि या अन्य किसी प्रकार से दूसरा अर्थ निकलता है। पहले प्रकार की उक्ति में श्लेष वक्रोक्ति होती है और दूसरे प्रकार की उक्ति में काकु वक्रोक्ति होती है।)

उदा 1) *''एक कबूतर देख हाथ में पूछा कहाँ अपर है*
उसने कहा अपर कैसा? उड गया सपर है।''

(इस उदाहरण में बोलनेवाला 'अपर' शब्द 'दूसरा' इस अर्थ में बोलता है। सूननेवाला अर्थग्रहण करता है पंख विहीन।)

उदा. 2) *''श्रीकृष्ण-राधा के यहाँ गए। उनसे उन्होंने द्वार खोलने को कहा*
राधा - को तुम हो, इत आये कहाँ?
श्रीकृष्ण - धनश्याम।

(राधाने श्लेष से घनश्याम का अर्थ 'बादल' लगाकर कहा।)

हो तो कितहूँ बरसो।''

अर्थात् बादल का यहाँ क्या काम? यदि बादल हो तो जाकर कहीं जल बरसाओ।

4.3.1.3.4 यमक :

लक्षण - जब एक ही शब्द की अनेक बार भिन्न अर्थों में आवृत्ति होती है, वहाँ पर यमक अलंकार होता है।

उदा. 1) *''कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।''*

(यहाँ पहले 'पीर' का अर्थ है साधु और दूसरे 'पीर' का अर्थ है - पीडा या दु:ख।)

उदा. 2) *''कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।''*

(यहाँ पहले 'कनक'शब्द का अर्थ है - सोना और दूसरे 'कनक' शब्द का अर्थ है - धतूरा।)

4.3.1.4 अर्थालंकार :

4.3.1.4.1 उपमा :

लक्षण - जब किसी वस्तु की रूप-गुण संबंधी विशेषता स्पष्ट करने के लिए दूसरी परिचित (प्रसिद्ध) वस्तु से समता कही जाती है, तब 'उपमा' अलंकार होता है।

उपमा अलंकार के चार अंग होते हैं -

(अ) उपमेय - जिस वस्तु को उपमा दी जाती है उसे उपमेय कहा जाता है।

(ब) उपमान - जिस वस्तु की उपमा दी जाती है उसे उपमान कहा जाता है।

(क) वाचक - उपमेय और उपमान की समता प्रकट करनेवाला शब्द वाचक होता है।

(ड) धर्म - उपमेय और उपमान में रूप-गुण का साम्य 'धर्म' है।

उदा. 1) *सीता का मुख चंद्रमा के समान सुंदर है।*

(इस उदाहरण में सीता के मुख की तुलना चंद्रमा से की है। यहाँ 'सीता का मुख' उपमेय है। 'चंद्रमा' उपमान है, 'के समान' वाचक है और 'सुंदर' धर्म है।)

उदा. 2) *नील गगनसा शांत हृदय रो रहा।*

(हृदय-उपमेय, नील गगन - उपमान, सा-वाचक, शांत-धर्म)

4.3.1.4.2 रूपक :

लक्षण - जब उपमेय पर उपमान का अभेद्य आरोप होता है, तब 'रूपक' अलंकार होता है।

अथवा

जब उपमेय को उपमान के रूप में दिखाया जाता है, तब रूपक अलंकार होता है।

(यहाँ आरोप का अर्थ है- एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार रखना कि दोनों अभिन्न मालूम हो। दोनों में एकरूपता हो।)

उदा. 1) *नेत्र - कमल हैं।*

(यहाँ पर नेत्र और कमल का भेद मिटाकर अभिन्नता दिखायी गई है। नेत्र पर कमल का आरोप है।)

उदा. 2) *आँखों की करी कोठरी पुतली पलंग बिछाई*
पलकों की चिक डारी कै पिय को लिया रिझाई।।

(इस उदाहरण में आँखों पर कोठरी का, आँखों की पुतली पर पलंग का तथा पलकों पर चिक का अभेद्य आरोप है।)

4.3.1.4.3 दृष्टान्त :

लक्षण - जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों में साधारण धर्म की समानता बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रकट हो, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

(बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का आशय यह है कि, वास्तविक भिन्नता होने पर भी समानता प्रतीत हो। इस प्रकार उपमेय रूप में कही गई बात से मिलती-जुलती बात उपमान रूप में दूसरे वाक्य में होती है।)

दृष्टान्त के लिए आवश्यक है -

1) पहले वाक्य में कोई बात कही जाये।

2) दूसरे वाक्य में उससे मिलती-जुलती कोई दूसरी बात कहीं जाय।

3) दूसरा वाक्य पहले वाक्य के उदाहरण के भाँति हो, परंतु किसी शब्द द्‌वारा यह समानता का भाव प्रकट न किया जाय।

4) दोनों बातों की समानता किसी साधारण धर्म की समानता के कारण न हो।

उदा. 1) *''एक म्यान में दो तलवारें*
कभी नही रह सकती हैं।
किसी और से प्रेम नारियाँ
पति का क्यों सह सकती हैं॥''

उदा. 2) *राम की सुंदरता के सामने किसी दूसरे की सुंदरता अच्छी नहीं लगती।*
क्या किसी को गंगाजल छोडकर तलैया का जल भाता है।

4.3.1.4.4 अर्थान्तरन्यास :

लक्षण - जहाँ सामान्य कथन का विशेष कथन के द्‌वारा तथा विशेष कथन का सामान्य कथन के द्‌वारा समर्थन होता है, वहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

('सामान्य' का अर्थ है सर्वसाधारण बात तथा 'विशेष' का अर्थ है किसी विशिष्ट व्यक्ति या घटना से संबद्‌ध बात। आशय यह है कि अर्थान्तरन्यास में उपमेय वाक्य में यदि सामान्य बात होती है तो उसके समर्थन के लिए उपमान वाक्य में विशेष बात। इसी प्रकार यदि उपमेय वाक्य में विशेष बात होती है तो उसके समर्थन के लिए उपमान वाक्य में सामान्य बात होती है।

उदा. 1) *कृष्ण ने बचाया ब्रज इंद्र के प्रकोप से था।*
करते महान जन काम कौन-से नहीं?
(विशेष का सामान्य से समर्थन)

उदा. 2) *जिसके आने से सुख मिलता, उसके जाने से*
दुख होता।

सूर्योदय से सरसिज खिलता,

उसके बिना संकुचित होता।

(सामान्य का विशेष से समर्थन)

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. अलंकार कितने प्रकार के होते हैं?
2. श्लेष का शाब्दिक अर्थ क्या है?
3. किस अलंकार में वर्णों की आवृत्ति होती है?
4. शब्दालंकार किसे कहते हैं?
5. अर्थालंकार किसे कहते हैं?
6. उपमा अलंकार के कितने अंग होते हैं?
7. उपमेय किसे कहते हैं?
8. उपमेय पर उपमान का आरोप किस अलंकार में होता है?
9. एक ही शब्द के अनेक अर्थ किस अलंकार का लक्षण है?
10. उपमान किसे कहते हैं?

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **आभूषित** - सुशोभित करना
2. **चारू** - सुंदर
3. **सरसिज** - कमल
4. **काकु** - कंठ-ध्वनि
5. **आवृत्ति** - बार-बार आना, पुनरावृत्ति
6. **अभिन्न** - जो भिन्न न हो
7. **कोठरी** - कमरा
8. **चिक** - परदा
9. **सामान्य कथन** - साधारण बात
10. **विशेष कथन** - विशिष्ट घटना से संबंधित बात
11. **समर्थन** - पुष्टि
12. **चंचल** - अस्थिर, जो स्थिर न हो।

4.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. अलंकार तीन प्रकार के होते हैं?
2. श्लेष का शाब्दिक अर्थ है चिपका हुआ।
3. अनुप्रास अलंकार में वर्णों की आवृत्ति होती है।

4. जिस अलंकार में शब्दगत सौंदर्य का चमत्कार होता है, उसे शब्दालकार कहते हैं।
5. जो अलंकार अर्थ के द्‌वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं, उन्हें अर्थालंकार कहते हैं।
6. उपमा अलंकार के चार अंग होते हैं।
7. जिस वस्तु को उपमा दी जाती है उसे उपमेय कहते हैं।
8. उपमेय पर उपमान का आरोप रूपक अलंकार में होता है।
9. एक शब्दके अनेक अर्थ श्लेष अलंकार का लक्षण है।
10. जिस वस्तु की उपमा दी जाती है, उसे उपमान कहते है।

4.7 सारांश :

1. अलंकार साहित्य की शोभा बढानेवाला प्रमुख उपकरण है। सामान्य बात अलंकारों से विभूषित होकर विशेष मनोहरता से संपन्न हो जाती है।

2. अलंकारों के तीन भेद हैं - शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।

3. शब्दालंकारों में शब्दगत सौंदर्य का चमत्कार होता है और अर्थालंकार अर्थ के द्‌वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं।

4. अनुप्रास में एक ही वर्ण की आवृत्ति होती है। श्लेष में एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। यमक में एक शब्द की आवृत्ति होती है, परंतु अर्थ में भिन्नता होती है। वक्रोक्ति में वक्र या दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाता है।

5. उपमा में रूप-गुण की समता बताई जाती है। रूपक में उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है। दृष्टान्त में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। अर्थान्तरन्यास में सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन होता है।

4.8 स्वाध्याय :

1. निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण लिखिए।
   1) अनुप्रास 2) श्लेष 3) वक्रोक्ति 4) यमक
2. निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण लिखिए।
   1) उपमा 2) रूपक 3) दृष्टान्त 4) अर्थान्तरन्यास

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों के लक्षण और उदाहरण समझने का प्रयास करें। साथ ही मराठी भाषा के अलंकारों के साथ तुलना कीजिए।
2. पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के अन्य उदाहरण ढूँढिए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2. साहित्यलेखन - डॉ. राजकिशोर सिंह
3. काव्य-प्रदीप - पंडित रामबहोरी शुक्ल

○●○

सत्र VI : इकाई 1

काव्यभेद (महाकाव्य, प्रगीत, गजल)

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय-विवेचन

1.3.1 महाकाव्य

1.3.1.1 भारतीय दृष्टि से महाकाव्य

1.3.1.1.1 आचार्य भामह

1.3.1.1.2 आचार्य दण्डी

1.3.1.1.3 आचार्य विश्वनाथ

1.3.1.1.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

1.3.1.1.5 डॉ. बाबू गुलाबराय

1.3.1.1.6 डॉ. शंभूनाथ सिंह

1.3.1.1.7 सुमित्रानंदन पंत

1.3.1.2 महाकाव्य के भारतीय तत्त्व

1.3.1.2.1 कथावस्तु

1.3.1.2.2 नायक (पात्र और चरित्र-चित्रण)

1.3.1.2.3 रस

1.3.1.2.4 छंद

1.3.1.2.5 वर्णन

1.3.1.2.6 नाम (शीर्षक)

1.3.1.2.7 उद्देश्य

1.3.1.3 पश्चिमी दृष्टि से महाकाव्य

1.3.1.3.1 अरस्तू

1.3.1.3.2 एबर क्राम्बे

1.3.1.3.3 वॉल्टेअर

1.3.1.4 महाकाव्य के पश्चिमी तत्त्व

1.3.1.4.1 कथानक

1.3.1.4.2 पात्र और चरित्र-चित्रण

1.3.1.4.3 वर्णन शैली

1.3.1.4.4 उद्देश्य

1.3.2 प्रगीत काव्य

1.3.2.1 प्रगीत शब्द का अर्थ

1.3.2.2 प्रगीत का स्वरूप

1.3.2.3 प्रगीत की परिभाषाएँ

1.3.2.3.1 महादेवी वर्मा

1.3.2.3.2 रविंद्रनाथ टैगोर

1.3.2.3.3 गणपतिचंद्र गुप्त

1.3.2.3.4 डॉ. कृष्णदत्त अवस्थी

1.3.2.3.5 रामखेलावन पाण्डेय

1.3.2.3.6 अर्नेस्ट राइस

1.3.2.3.7 हडसन

1.3.2.3.8 रस्कीन

1.3.2.3.9 गोमर

1.3.3 प्रगीत काव्य के तत्त्व

1.3.3.1 भाव-तत्त्व

1.3.3.2 संगीतात्मकता

1.3.3.3 वैयक्तिकता

1.3.3.4 संक्षिप्तता

1.3.3.5 प्रवाहमयी शैली

1.3.3.6 रागात्मक अन्विति

1.3.3.7 सहज अन्तः प्रेरणा

1.3.4 प्रगीत के भेद (प्रकार)

1.3.4.1 प्रेमगीत

1.3.4.2 व्यंग गीत

1.3.4.3 शोक गीत
1.3.4.4 आख्यान गीत
1.3.4.5 संबोधन गीत
1.3.4.6 प्रयाण गीत
1.3.4.7 राष्ट्रीय गीत
1.3.4.8 भक्तिगीत
1.3.4.9 लोकगीत
1.3.4.10 चतुर्दषपदी (सॉनेट)
1.3.4.11 उपालम्भ गीत
1.3.4.12 नृत्यगीत
1.3.4.13 गीतिनाट्य

1.3.5 गजल

1.3.5.1 गजल शब्द का अर्थ

1.3.5.2 गजल की परिभाषाएँ
1.3.5.2.1 नालंदा विशाल शब्दसागर
1.3.5.2.2 हिंदी साहित्य कोश भाग एक
1.3.5.2.3 फिराख गोरखपुरी
1.3.5.2.4 डॉ. अर्शद जमाल
1.3.5.2.5 डॉ. नगेंद्र
1.3.5.2.6 डॉ. सरदार मुजावर
1.3.5.2.7 डॉ. मधु खराटे

1.3.5.3 गजल के अंग
1.3.5.3.1 काफिया (काफिया)
1.3.5.3.2 रदीफ
1.3.5.3.3 शेर
1.3.5.3.4 मिसरा

1.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न
1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
1.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई पढने के बाद आप,

1. काव्य के विभिन्न भेदों से परिचित हो जाएँगे।
2. महाकाव्य विषयक भारतीय तथा पश्चिमी मान्यताओं को समझ सकेंगे।
3. महाकाव्य के भारतीय तथा पश्चिमी तत्त्वों से अवगत हो जाएँगे।
4. 'प्रगीत' का स्वरूप, परिभाषाएँ, तत्त्व, भेद आदि से परिचित होंगे।
5. 'गजल' शब्द का अर्थ, गजल की परिभाषाएँ, गजल के अंग आदि से अवगत हो जाएँगे।
6. महाकाव्य के तत्त्वों के आधार पर किसी भी महाकाव्य की समीक्षा करने में समर्थ हो जाएँगे।
7. महाकाव्य, गजल, प्रगीत आदि विधाओं के सृजन की प्रेरणा मिल जाएगी।

1.2 प्रस्तावना :

साहित्य समाज का दर्पण है। वह हमेशा मनुष्य का सहचर बना हुआ है। मनोरंजन तथा ज्ञान का साधन बना हुआ है। साहित्य के अंतर्गत अनेक विधाएँ हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक साहित्य का सृजन हो रहा है। आगे भी होता रहेगा। साहित्य युग के साथ परिवर्तित हो रहा है। कविता भी इसके लिए अपवाद नहीं है। हमारे पाठ्यक्रम में महाकाव्य, प्रगीत काव्य तथा गजल का समावेश किया है। अत: हम उनपर विवेचन करेंगे।

1.3 विषय विवेचन :

अबतक आपने जो पढाई की उसमें अनेक कविताओं का अध्ययन किया होगा लेकिन कभी काव्य के भेदों के बारे में गहराई से नहीं सोचा होगा। बी. ए. भाग दो में अध्ययन करते समय आपने खंडकाव्य पढा होगा, आधुनिक कविताओं का अध्ययन किया होगा लेकिन महाकाव्य तथा प्रगीत के भेदों के बारे में नहीं सोचा होगा। इसीलिए हम इस इकाई में महाकाव्य क्या है? महाकाव्य विषयक विभिन्न विद्वानों की मान्यताएँ कौनसी हैं? महाकाव्य के भारतीय तथा पश्चिमी तत्त्व कौनसे हैं? प्रगीत काव्य किसे कहते हैं? प्रगीत के तत्त्व कौनसे हैं? प्रगीत के भेद कौनसे हैं? गजल शब्द का अर्थ क्या है? गजल की परिभाषाएँ तथा गजल के अंग आदि का विवेचन करेंगे। जिससे आपको इन विधाओं को समझने में आसानी होगी।

1.3.1 महाकाव्य :

काव्य भेदों के बारे में विभिन्न आचार्यों ने गहन चिंतन के आधार पर अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं। काव्य

का वर्गीकरण भी विविध आधारों पर किया हे। इन आधारों में से बंध यह एक आधार है। बंध के आधारपर काव्य के दो भेद किये हैं - प्रबंध और मुक्तक। प्रबंध के भी तीन भेद किये हैं - महाकाव्य, खंडकाव्य तथा एकार्थ काव्य। आपके पाठ्यक्रम में इनमें से महाकाव्य का समावेश किया है।

महाकाव्य शब्द 'महत्' और 'काव्य' इनके मेल से बना है। महाकाव्य का अर्थ है - 'महत्' या बहुत बडा, या विस्तृत काव्यग्रंथ अथवा 'सर्वश्रेष्ठ काव्य'। महाकाव्य में महत प्रसंग या घटना का विश्लेषण होता है। महाकाव्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वाल्मीकि 'रामायण' के 'उत्तरकांड' में हुआ हैं।

1.3.1.1 भारतीय दृष्टि से महाकाव्य :

भारतीय काव्यचिंतकों ने महाकाव्य के स्वरूप पर गंभीरता से चिंतन किया है। एक ओर महाकाव्य की परिभाषाओं में एकता दिखाई देती है तो दूसरी ओर भिन्नता भी दिखाई देती है। इसका मूल कारण यह है कि विभिन्न युगों में महाकाव्य विषय चिंतन में परिवर्तन आया। विभिन्न आचार्यों ने युगानुरूप महाकाव्य के लिए मानदण्ड निर्धारित किये। इसी कारण महाकाव्य की परिभाषाओं में भिन्नता दिखाई देती है।

1.3.1.1.1 आचार्य भामह : आचार्य भामह ने अपने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में महाकाव्य के विषय में लिखा है -

1) महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है।

2) महाकाव्य का आकार विस्तृत होता है।

3) महाकाव्य में महानता होती है।

4) महाकाव्य का कथानक उदात्त होना चाहिए।

5) महाकाव्य में उदात्त चरित्रवाले किसी महान पुरुष का नायक के रूप में वर्णन होता है।

6) महाकाव्य में नाटकीय संधियों का निर्वाह होना चाहिए।

7) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक फल की प्राप्ति को दिखलाना चाहिए।

8) महाकाव्य में एक प्रधान रस हो साथही अन्य रसों का भी वर्णन हो।

9) महाकाव्य में नायक की विजय दिखलानी चाहिए।

10) महाकाव्य में दरबार, वातावरण, दूतों का योग, युद्ध का अभियान, बाह्य संघर्ष, सूर्य, चंद्र, नदी आदि का वर्णन हो।

11) महाकाव्य में अलंकारयुक्त अग्रामीण भाषा का प्रयोग हो।

1.3.1.1.2 आचार्य दण्डी : भामह के बाद आचार्य दण्डीने अपने 'काव्यादर्श' नामक ग्रंथ में महाकाव्य के बारे में लिखा है -

1) महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक होना अपेक्षित है।

2) नायक उदात्त एवं चतुर होना चाहिए।

3) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि में से किसी एक फल की प्राप्ति को दिखलाना आवश्यक है।

4) महाकाव्य की भाषा अलंकायुक्त हो।

5) महाकाव्य का आकार बडा होना चाहिए।

6) सर्ग और छंदों पर विशेष ध्यान हो।

7) रस काव्य का प्राण है अर्थात् महाकाव्य रसों से भरा हो।

8) महाकाव्य का नायक उदात्त एवं चतुर हो।

1.3.1.1.3 आचार्य विश्वनाथ : आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' नामक ग्रंथ में महाकाव्य के बारे में कहा है -

1) महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण से होना चाहिए।

2) कथानक सज्जनाश्रित एवं ऐतिहासिक हो।

3) नायक कुलीन, क्षत्रिय, धीरोदात्त हो।

4) कथावस्तु सर्गों में विभाजित हो।

5) चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से किसी एक फल की प्राप्ति को दिखलाना आवश्यक है।

6) सर्ग आठ से अधिक हो, सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन आवश्यक है।

7) श्रृंगार, वीर, शांत इनमें से एक प्रधान रस हो तथा अन्य रस सहायक रस के रूप में होने चाहिए।

8) महाकाव्य का शीर्षक, कवि, कथानक, नायक, नायिक, तथा सर्गों के नाम के आधारपर हो।

9) नाट्य संधियों का सफलता से निर्वाह होना चाहिए।

10) महाकाव्य में सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा, प्रकृति, यात्रा आदि का वर्णन हो।

1.3.1.1.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : ''महाकाव्य का इतिवृत्त व्यापक और सुसंगठित होना चाहिए, सामाजिक को आंदोलित करनेवाली वस्तुओं और व्यापारों का चित्रण होना चाहिए, रसानुभूति में सहायक, विशद, प्रांजल तथा सुष्ठु भाव व्यंजना होनी चाहिए। संवाद रोचक, नाटकीय तथा औचित्यपूर्ण होने चाहिए।''

आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने महाकाव्य में केवल चार तत्वों की महत्ता स्वीकार की है - इतिवृत्त, वस्तु व्यापार वर्णन, भावव्यंजना और संवाद। शुक्लजी ने अप्रत्यक्ष रूप से महाकाव्य में संदेश की महानता और शैली की प्रौढता का उल्लेख किया है।

1.3.1.1.5 डॉ. बाबू गुलाबराय : ''महाकाव्य वह विषयप्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बडे आकार में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्योंद्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।''

1.3.1.1.6 डॉ. शंभूनाथसिंह : ''महाकाव्य वह छन्दबद्ध रचना है, जो तीव्र कथा-प्रवाह के साथ-साथ मानवीय अनुभूतियों का लेखा-जोखा रखती है।''

1.3.1.1.7 सुमित्रानन्दन पंत : ''महाकाव्य मानव-सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास में जीवन्त पर्वताकार दर्पण है, जिसमें मुख देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है।''

1.3.1.2 महाकाव्य के भारतीय तत्त्व :

महाकाव्यसंबंधी भारतीय 'धारणा' का विश्लेषण करने पर निम्नांकित तत्त्व बनाए जा सकते हैं।

1.3.1.2.1 कथावस्तु : महाकाव्य में कथावस्तु अनिवार्य तत्व है। लगभग सभी भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में कथा का होना आवश्यक बताया है। महाकाव्य की कथावस्तु इतिहास, पुराण और लोकप्रसिद्ध कथा के आधार पर होनी चाहिए। महाकाव्य का कलेवर विशाल होता है, उसमें नायक के जीवन की संपूर्ण झाँकि प्रस्तुत की जाती है। कथावस्तु का प्राण कोई एक घटना होती है। उसी घटना पर आधारित पूरी कथा होती है। प्रारंभ से अंततक चलनेवाली कथा को मुख्य कथानक कहा जाता है। मुख्य कथा का विकास करने के लिए बीच-बीच में प्रासंगिक कथाओं को होना भी महत्त्वपूर्ण होता है। महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण से होना चाहिए। मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है - अशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक। महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण से इसलिए किया जाना चाहिए कि महाकाव्य विशाल होता है। इस विशाल काव्यरचना को पूरा करने में कोई बाधा न आए निर्विघ्न रुपसे महाकाव्य पूरा हो जाए। इसीलिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। महाकाव्य की कथावस्तु कमसे कम आठ सर्गो में विभाजित होनी चाहिए। महाकाव्य के कथानक के लिए ज्यादह से ज्यादह तीस सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य की कथावस्तु को सर्गों में विभाजित किया जाना आवश्यक है। प्रत्येक सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन किया जाना अपेक्षित है। सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथावस्तु की सूचना होनी चाहिए। महाकाव्य का प्रत्येक सर्ग एक दूसरे से बंधा होना चाहिए। महाकाव्य की कथावस्तु उदात्त होनी चाहिए। मुख्य फल प्राप्ति के बाद कथानक पूरा हो जाता है। कथावस्तु की समाप्ति पर महाकाव्यकार की कोई महत्त्वपूर्ण पंक्ति होती है। उसे 'भरतवाक्य' कहते हैं।

1.3.1.2.2 नायक (पात्र और चरित्र-चित्रण) : भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में नायक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिए। महाकाव्य का नायक कोई देवता या उच्च कुल में उत्पन्न क्षत्रीय राजा होना चाहिए। नायक महाकाव्य के सभी प्रसंगों से जुडा हुआ होना चाहिए। महाकाव्य का नायक उदात्त, गंभीर, कीर्तिसंपन्न, व्यवहार कुशल, धर्मप्रिय, न्यायप्रिय, कलाप्रिय, उत्साही, पराक्रमी, शक्तिशाली होना चाहिए। नायक का चरित्र समाज में सद्प्रवृत्ति का विकास करनेवाला होना चाहिए। प्रतिकूल परिस्थिति में भी विजय हासिल करनेवाला हो। महाकाव्य में नायक के साथ-साथ अन्य पात्रों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इसमें नायिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह नायक की प्रेयसी अथवा पत्नी होती है। भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में खलनायक को

भी महत्त्वपूर्ण माना है। नायक के कार्य का विरोध करनेवाला पात्र खलनायक होता है। प्रतिनायक या खलनायक कथावस्तु में संघर्ष को बढाता है, जिससे नायक के चरित्र का विकास होता है। महाकाव्य में उपर्युक्त तीन पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्र भी होते हैं। इन पात्रों के माध्यम से विविध क्षेत्रों का वर्णन किया जाता है। कुलमिलाकर इतनाही कहा जा सकता है कि महाकाव्य के नायक का स्थान सर्वोच्च या सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए।

1.3.1.2.3 रस : रस महाकाव्य का तिसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। महाकाव्य विशाल होता है, इसमें जीवन का व्यापक चित्रण किया जाता है। अत: महाकाव्य में सभी रसों का वर्णन आवश्यक है। भारतीय अचार्यों ने रस को अनिवार्य माना है। महाकाव्य में प्रधानत: श्रृंगार, वीर और शांत रस का वर्णन होना आवश्यक है। इन तीनों में से कोई एक प्रधान रस होना चाहिए, अन्य रस गौण रस के रुप में आने चाहिए। रस के कारण महाकाव्य हृदयस्पर्शी और हर्षदायक बनता हे।

1.3.1.2.4 छंद : महाकाव्य सर्गबद्ध तथा छंदबद्ध रचना है। महाकाव्य की कथा का विकास करने के लिए छंद का होना अनिवार्य है। छंद के कारण रसप्रवाह आता है। इसके लिए एक सर्ग में एकही छंद का प्रयोग किया जाना चाहिए। सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन अपेक्षित है। अंतिम छंद में आनेवाले सर्ग की कथावस्तु की सूचना होनी चाहिए। प्रत्येक सर्ग में स्वतंत्र छंद का प्रयोग हो। कभी-कभी चमत्कार, वैविध्य एवं अद्भुत रस की निष्पत्ति के लिए एक सर्ग में अनेक छंदों का प्रयोग कर सकते हैं। छंद के कारण महाकाव्य में एक प्रकार की प्रभावोत्पादकता आती है। गति बनी रहती है। नादमाधुर्य आता है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में अलग-अलग छंद होता है लेकिन वे एक दूसरे से संबंधित रहते हैं, पूरक रहते हैं। लगभग सभी भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में 'छंद' को अनिवार्य माना है।

1.3.1.2.5 वर्णन : महाकाव्य के अन्य तत्त्वों के समान वर्णन तत्त्व का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य युगविशेष का दर्पण होता है। महाकाव्य में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। महाकाव्य में विविधता दिखाने के लिए यह तत्त्व अनिवार्य है। महाकाव्य में संपूर्ण जीवन का चित्रण होता है इसीलिए वर्णनात्मक शैली को अपनाना चाहिए। महाकाव्य में विविध प्रसंगों का चित्रण होता है जैसे प्रधान, संध्या, उद्यान, सरोवर, नदी, नगर, पहाड, जंगल, युद्ध प्रसंग, ऋतुओं का वर्णन, उत्सवों का वर्णन आदि। इस प्रकार के वर्णन से महाकाव्य में जीवंतता आती है। महाकाव्य में सज्जन की प्रशंसा और दुर्जन की निंदा का भी वर्णन होना चाहिए।

1.3.1.2.6 नाम (शीर्षक) : महाकाव्य का शीर्षक या नामकरण महाकाव्य के नायक, नायिका, विषयवस्तु के आधारपर होना आवश्यक है। महाकाव्य का शीर्षक लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करनेवाला होना चाहिए। महाकाव्य का शीर्षक विसंगत न हो। शीर्षक कथावस्तु के अनुकूल होना चाहिए, औचित्यपूर्ण तथा अर्थपूर्ण होना चाहिए। महाकाव्य का शीर्षक या नाम प्रभावशाली और उदात्त होना चाहिए।

1.3.1.2.7 उद्देश्य : कोई भी रचना निरुद्देश्य नहीं होती, हर रचना के पिछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। महाकाव्य तो सोद्देश्य रचना है। महाकाव्य महानता का प्रकाशक होता है। भारतीय आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि में से किसी एक के फल की प्राप्ति को उद्देश्य माना है। नायक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमेशा संघर्षरत रहता है। महान संदेश देना, किसी व्यक्ति के महान कार्य को उद्घाटित करना, नायक के चरित्र पर

प्रकाश डालना, नायक की विजय दिखलाना, असत्य पर सत्य की विजय दिखलाना, सत् चरित्र का निर्माण करना, लोकरंजन, राष्ट्रभक्ति, नैतिक आदर्श स्थापन करना, मानवतावादी मूल्यों की रक्षा करना, नायक के चरित्र से प्रेरणा देना आदि कई उद्देश्य महाकाव्य लेखन के पीछे हो सकते हैं।

इस तरह भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के विविध तत्त्वों का विवेचन किया है।

1.3.1.3 पश्चिमी दृष्टि से महाकाव्य :

भारतीय आचार्यों की तरह पश्चिमी आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षणों का सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन किया है। पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में महाकाव्य के लिए 'एपिक' (Epic) शब्द प्रचलित है। 'एपिक' (Epic) शब्द 'एपोस' (Epos) से बना है। जिसका अर्थ है 'शब्द'। पश्चिमी काव्यशास्त्र में सबसे पहले अरस्तूने चिंतन किया है।

1.3.1.3.1 अरस्तू : अरस्तू ने अपने 'पोएटिक्स' (Poetics) नामक ग्रंथ में महाकाव्य के बारे में लिखा है-

1) महाकाव्य दीर्घकाल का कथात्मक अनुकरण है।

2) उसकी कथावस्तु सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित होती है।

3) उसमें कार्यान्विति की आवश्यकता होती है।

4) कथावस्तु का आधार ऐतिहासिक होते हुए भी कल्पना मिश्रित होता है।

5) महाकाव्य के वर्णनों में स्वाभाविकता रहनी चाहिए, कवि को असंभव घटनाओं का वर्णन नहीं करना चाहिए।

6) महाकाव्य में जीवन का व्यापक चित्रण होता है।

7) महाकाव्य में ६ पदोवाले वीर छंद की योजना रहनी चाहिए।

8) महाकाव्य का नायक इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिए।

9) महाकाव्य घटनाप्रधान या उपदेशप्रधान होता है।

10) महाकाव्य का उद्देश्य श्रोताओं का मनोरंजन है।

11) इसकी भाषाशैली सरल तथा अलंकृत होती है।

उपर्युक्त विवेचन से यही स्पष्ट होता है कि अरस्तू का दृष्टिकोण व्यापक, कलात्मक तथा यथार्थवादी है।

1.3.1.3.2 एबरक्राम्बे : ''बडे आकार के कारण कोई महाकाव्य नहीं हो जाता। जब उसकी शैली महाकाव्य की शैली होगी तभी उसे महाकाव्य माना जाएगा। और वह शैली कवि की कल्पना और विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति में जूडी रहती है। इस शैली के काव्य हमें एक ऐसे लोक में पहुँचा देते हैं जहाँ कुछ भी महत्त्वहीन ओर असार-गर्भित नहीं होता, महाकाव्य में एक पुष्ट, स्पष्ट और प्रतिकात्मक उद्देश्य होता है, जो उसकी गति का आद्यन्त संचालन करता है।''

एबरक्राम्बे के मतानुसार केवल विशाल आकारवाली रचना को महाकाव्य नहीं माना जाएगा। महाकाव्य में कोई भी ऐसी बात न हो कि जिससे महाकाव्य की गरिमा को ठेस पहुँचे।

एबरक्राम्बेने एपिक के दो भेद किए हैं - साहित्यिक और ऐतिहासिक।

1.3.1.3.3 वाल्टेअर (Waltaire) **:** ''ऐसे काव्यग्रंथ ही महाकाव्य के नाम के अधिकारी हैं, जिनमें किसी महती घटना का वर्णन होता है और जिन्हें समाज व्यवहारता महाकाव्य मानने लगता है। चाहे उसकी घटना सरल हो या जटिल, चाहे एक स्थानपर ही घटित होनेवली हो या उसका नायक संसार भर में भटकता फिरे, चाहे उसमें एक नायक हो या अनेक, चाहे उसका नायक अभागा हो या सौभाग्यशाली, भयंकर क्रोधी हो या धर्मात्मा हो, चाहे वह राजा हो या सेनापति या इनमें से कुछ भी न हो, चाहे उसके दृश्य महासागर के हो या धरती के, स्वर्ग के या नरक के, इससे कुछ नहीं बनता-बिगडता। इसके बावजूद महाकाव्य तब तक महाकाव्य कहा जाता रहेगा, जब तक आप उसके गुणों के अनुरूप उसका कुछ और नामकरण नहीं कर देते।''

वॉल्टेअर की इस परिभाषा को अनेक विद्वानों ने सर्वश्रेष्ठ घोषित कर दिया हैं।

1.3.1.4 महाकाव्य के पश्चिमी तत्त्व :

1.3.1.4.1 कथानक : एपिक का कथानक ऐतिहासिक होना चाहिए। कुछ विद्वानों के अनुसार काल्पनिक घटनाओं का समावेश भी हो सकता है। कथानक के अंतर्गत जीवन की व्यापकता का समावेश आवश्यक है। कथानक इतना व्यापक होना चाहिए की उसमें जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन किया जा सकें। कथानक में घटनाओं का सुसंगठन आवश्यक होता है। कथानक के आदि मध्य, और अंत सुस्पष्ट होने चाहिए। कथानक में कौतुहल होना चाहिए। महाकाव्य के कथानक में असंभव लगनेवाली घटनाओं का वर्णन नहीं होना चाहिए।

1.3.1.4.2 पात्र और चरित्र - चित्रण : एपिक में दो प्रकार के पात्र होते हैं - प्रमुख पात्र और गौण पात्र। सभी पात्रों में नायक सर्वश्रेष्ठ होता है। नायक इतिहास का प्रसिद्ध व्यक्ति या महापुरुष होना चाहिए। नायक उदात्त चरित्रवाला होना चाहिए। नायक में उच्च गुणों का समावेश होना चाहिए। वह शूरवीर होना चाहिए। नायक के कार्य ऐसे होने चाहिए जिसकी सभी लोग प्रशंसा कर सके। महाकाव्य का नायक संघर्षरत हो। नायक मानवतावादी हो। अन्य पात्रों के चित्रण में विविधता हो। उनमें महानता हो। चरित्र-चित्रण में गंभीरता आवश्यक है।

1.3.1.4.3 वर्णन शैली : पाश्चात्य धारणा के अनुसार एपिक वर्णन-प्रधान काव्य है। एपिक का कथानक विस्तृत होने के कारण अनेक आवश्यक बातों का वर्णन होता है। पात्रों की स्वभाव संबंधी विशेषताओं का भी वर्णन होता है। कभी-कभी कथानक का विस्तार करने के लिए वर्णन शैली आवश्यक होती है। वर्णन शैली के कारण महाकाव्य (एपिक) गंभीर, रमणीय एवं प्रभावशाली बनता है। वर्णन शैली को अपनाते समय सुष्ठु और प्रौढ भाषा का प्रयोग अपेक्षित है। प्रसंगानुरूप वर्णनशैली में उत्कृष्ट छंदों का प्रयोग किया जाता है। जीवन की विविध घटनाओं का रोचक ढंगसे वर्णन होना चाहिए। वर्णन के द्वारा जीवन के विविध दृश्य सजीव रूप में प्रस्तुत होते हैं। एपिक की भाषा बोलचाल की भाषा से भिन्न होनी चाहिए। अलंकृत भाषा का प्रयोग आवश्यक है।

1.3.1.4.4 उद्देश्य : एपिक के उद्देश्य के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। प्राचीन विद्वानों के अनुसार एपिक का उद्देश्य नैतिक और धार्मिक होना चाहिए। अरस्तू के अनुसार एपिक का उद्देश्य सत्य का उद्घाटन और आनंदकी प्राप्ति है। महाकाव्य में मानवतावादी जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। इस तरह एपिक के भिन्न-भिन्न उद्देश्य बताए हैं।

इस तरह पाश्चात्य विद्वानों ने एपिक के विविध तत्त्व बताए हैं।

निष्कर्षत : यह कहा जा सकता है कि महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। जिसमें महती घटना को ध्यान में रखकर कथानक का विस्तार किया जाता है। महाकाव्य का नायक उच्चकुलोत्पन्न, सर्व गुण संपन्न होता है। महाकाव्य में जीवन की व्यापकता का चित्रण होता है। महाकाव्य की शैली उदात्त एवं गरिमामयी होती है। नायक के साथ साथ अन्य पात्रों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। महाकाव्य का उद्देश्य महान संदेश देना होता है।

1.3.2 प्रगीत काव्य :

भारतीय आचार्यों ने काव्य के दो भेद किए हैं - प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबंध काव्य में कथा के सूत्र में सारे पद बँधे हुए होते हैं। इसके विरुद्ध मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद स्वतंत्र होता है। मुक्त में कोई कथासूत्र नहीं होता। प्रत्येक पद अपने आप में पूर्णभाव या अर्थ व्यक्त करता है। प्रत्येक पद अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। मुक्त काव्य कें दो भेद किए जाते हैं -

1) पाठ्यमुस्तक 2) गेय मुक्तक

1.3.2.1 प्रगीत शब्द का अर्थ :

काव्य के विविध रूपों के अंतर्गत 'प्रगीत' काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रगीत शब्द 'गीत' में 'प्र' उपसर्ग जोडकर बनाया गया है। शब्दकोशों में भी प्रगीत का अर्थ 'गीत' या 'गान' दिया है। प्रगीत को अंग्रेजी में (लिरिक) Lyric कहा जाता है। प्रगीत को गीत, गीतिकाव्य आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। प्रगीत में भावों की प्रधानता होती है। इस विशेषता को देखकर डॉ. ज्ञानराज गायकवाडजी ने प्रगीत को 'भावगीत' नाम से संबोधित किया है।

1.3.2.2 प्रगीत का स्वरूप :

मुक्तक काव्य के अंतर्गत 'गीतिकाव्य' को सर्वाधिक महत्त्व दिय जाता है, क्योंकि इसकी तुलना में 'पाठ्यपुस्तक' उतने प्रभावशाली नहीं होते। गीतिकाव्य में कवि अपने व्यक्तिगत सुख-दु:ख की तीव्रतम अनुभूति को व्यक्त करने के लिए संगीत प्रधान कोमल शब्दावली को चुनता हैं। इसमें सरसता, कोमलता, रागात्मकता, लाघव, मार्मिकता और वैयक्तिकता के गुण विद्यमान रहते है। गीतिकाव्य कवि के हृदय का स्पंदन होता है, जिसमें वह प्रेम, कलह, वेदना, हर्ष, विषाद आदि का चित्रण करता है। इसकी रचना करने के लिए कवि बाह्य जगत् को अपने अंत:करण में ले जाकर इसे भावपूर्ण बनाता है। गीत के रूप में उसकी आत्माभिव्यंजना अत्यंत सशक्त होती है। वह शब्द साधना के साथ-साथ स्वर-साधना भी करता है। अनेक विद्वानों ने प्रगीत की परिभाषा करने का प्रयत्न किया है।

1.3.2.3 प्रगीत की परिभाषाएँ :

1.3.2.3.1 महादेवी वर्मा : ''सुख-दु:ख की भावावेशमयी अवस्था विशेष को गिने-चुने शब्दों में चित्रित कर देना ही गीत है।''

1.3.2.3.2 रविंद्रनाथ टैगोर : ''मन में जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है तब कवि से गीत काव्य में प्रकाशित किये बिना नहीं रह सकते।''

1.3.2.3.3 गणपतिचंद्र गुप्त : ''गीतिकाव्य एक ऐसी लघुआकार एवं मुक्तक शैली में रचित रचना है, जिसमें कवि निजी अनुभूतियों या किसी एक भावदशा का प्रकाशन संगीत या लयपूर्ण कोमल पदावली में करता है।''

1.3.2.3.4 डॉ. कृष्णदत्त अवस्थी : ''गीतिकाव्य कवि की व्यक्तिगत मार्मिक अनुभूति का वह प्रभावपूर्ण संगीतात्मक प्रकाशन है, जिसमें प्रेषणीयता, घनत्व, लाघव स्पष्टता एवं ध्वन्यात्मकता के गुणों का समुचित समावेश हो।''

1.3.2.3.5 रामखेलावन पांडेय् : ''सजीव भाषा में व्यक्ति के आंतरिक भावों की सक्षम अभिव्यंजना संगीतात्मकता के आग्रह के साथ जिसमें होती है वह गीतिकाव्य है।''

1.3.2.3.6 अर्नेस्ट राइस : ''सच्चा गीत वहीं है, जो भावात्मक विचार का भाषा में स्वाभाविक विस्फोट हो।''

1.3.2.3.7 हडसन : ''गीतिकाव्य की सबसे बडी कसौटी वैयक्तिकता की छाप है। किंतु वह व्यक्ति वैचित्र्य में समाहित न रहकर व्यापक-मानवीय भावनाओं पर ही आधारित होती है, जिससे प्रत्येक पाठक उसमें अभिव्यक्त भावनाओं एवं अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर सके।''

1.3.2.3.8 रस्कीन : ''गीतिकाव्य कवि की निजी अनुभूतियों का प्रकाशन होता है।''

1.3.2.3.9 गोमर : ''गीतिकाव्य वह अन्तवृत्ति निरूपणी कविता है, जो वैयक्तिक अनुभूतियों से पोषित होती है, जिसका संबंध घटनाओं से नहीं, अपितु भावनाओं से होता है तथा जो किसी समाज की परिष्कृत अवस्था में निर्मित होती है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर गीतिकाव्य की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं, जो इस प्रकार हैं -

1) इसमें व्यक्तिगत अनुभूति की प्रमुखता होती है।

2) प्रगीत काव्य का संबंध बुद्धि से न होकर हृदय से होता है।

3) इसकी शैली प्रवाहमयी होती है।

4) इसमें भावप्रवणता होती है।

5) प्रगीत काव्य में गेयता एवं संगीतात्मकता होती है।

6) इसकी भाषा सरल, मधुर और कोमल होती है।

7) इसमें मार्मिकता, संक्षिप्तता होती है।

8) इसमें पूर्वापार संबंध नहीं होता।

9) इसमें सहज अन्त: प्रेरणा होती है।

10) प्रगीत में समाहित प्रभाव होता है।

1.3.3 प्रगीत काव्य गीतिकाव्य के तत्त्व :

1.3.3.1 भाव-तत्त्व (भाव-प्रवणता) :

भाव प्रगीत की आत्मा है। तीव्र भाव ही प्रगीत को जन्म देता है। भाव की तीव्रता कवि को अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करती है। कवि की भावनाओं का सहज उद्रेक प्रगीत में होता है। प्रत्येक प्रगीत में एकही भाव होता है। भाव-प्रवणता प्रगीत के प्रभाव में वृद्धि करती है।

1.3.3.2 संगीतात्मकता :

प्रगीत काव्य में संगीतात्मकता का विशेष महत्त्व होता है। अनुभूति की तीव्रता के कारण प्रगीत में संगीतात्मकता आ जाती है। प्रगीत में संगीत का प्रवाह अपने-आप आ जाता है। प्रगीत में एक लय और प्रवाह होता हैं इसमें शास्त्रीय शैली का आधार लेना आवश्यक नहीं है। नाद सौंदर्य पर ध्यान देना चाहिए। यह नाद सौंदर्य कोमलकांत पदावली, वर्णमैत्री आदि द्वारा साध्य होता है। यह नादसौंदर्य शब्द संगीत का जनक होता है। संगीतात्मकता के कारण गेयता अपने आप आ जाती है।

1.3.3.3 वैयक्तिकता :

प्रगीत व्यक्तिप्रधान काव्य है। वैयक्तिकता से ही गीत में प्रभावकारिता आती है। इसे आत्मतत्त्व भी कहा जाता है। जब कवि के हृदय में आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख आदि मनोवेगों का ज्वार तीव्र गति से उमडता है, तब कवि उसे व्यक्त करने के लिए विवश हो जाता है। वैयक्तिक अनुभूति जितनी तीव्र होती है उतना ही गीत रोचक, रसात्मक एवं ग्राह्य लगता है।

1.3.3.4 संक्षिप्तता :

प्रगीत का आकार अत्यंत संक्षिप्त होता है। इसमें कवि की एक समय की अनुभूति व्यक्त होती है। यह अनुभूति तीव्र होती है, इस कारण प्रगीत में संक्षिप्तता अपनेआप आ जाती है। साहित्यिक संक्षेप का सर्वाधिक प्रयोग प्रगीत में होता है।

1.3.3.5 प्रवाहमयी शैली :

प्रगीत की शैली में प्रवाहमयता आवश्यक है। शैली के माध्यम से प्रगीत में प्रेषणीयता आती है। प्रेषणीयता की दृष्टि से गीतकार को सुन्दर एवं कोमल शब्दों का चयन करना पडता है। पदविन्यास में माधुर्य का ध्यान रखना पडता

है। प्रगीत में कठोर और कर्ण-कटु वर्णो का प्रयोग नहीं किया जाता, दुर्बोध और दार्शनिक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता। गाने के लिए उपयुक्त कोमल और मधुर शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

1.3.3.6 रागात्मक अन्विति :

गीत में गीतकार अपने नीजि भावों की अभिव्यक्ति करता है। कवि के मन में जो मूलभाव रागात्मकता को लेकर प्रथम पंक्ति में प्रकट होता है, आनेवाली पंक्तियों में उसका विस्तार होता है। गीत में आदि से अंततक एकही मनोराग व्याप्त होता है। रागात्मक अन्विति गीत के लिए आवश्यक है।

1.3.3.7 सहज अन्त: प्रेरणा :

प्रगीत में वैयक्तिकता होती है। भावप्रवणता होती है। इसी कारण गीत में सहज अन्त: प्रेरणा आवश्यक होती है। गीत में कोरी कल्पना न हो। कोरी कल्पना से कुछ भी हासिल नहीं होता। जब गीतकार आवेश के रूपमें हार्दिकता को व्यक्त नहीं करता तब तक गीत को सफल नहीं माना जा सकता।

1.3.4 प्रगीत के भेद (प्रकार) :

प्रगीत 'भावनाप्रधान' और 'विचारप्रधान' होते हैं। भावप्रधान गीतों में कवि के मानसिक उद्वेग की प्रधानता होती है। विचारप्रधान गीतों में विचार की प्रधानता होती है। प्रगीत का वर्गीकरण वृत्ति, शैली, आकार आदि के आधार पर किया जाता है। प्रगीत के भेद निम्नांकित हैं -

1.3.4.1 प्रेम गीत :

प्रेम गीत प्रगीत काव्य का सबसे प्राचीन रूप है। विश्व का प्राचीन साहित्य प्रेमगीतों में ही उपलब्ध है। प्रेमगीत में दोनों पक्षों का चित्रण रहता है (संयोग और वियोग)। प्रेमगीत का मूलाधार विरहपक्ष है। इस प्रकार के गीतों में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रहती है। 'रामायण' और 'मेघदूत' में अनेक सुन्दर गीत मिलते हैं। प्रेमगीतों का सृजन करनेवालों में विद्यापति, सूरदास, घनानंद, रसखान, आलम, देव आदि के नाम लिए जा सकते हैं आधुनिक युग में प्रसाद, पंत, निराला, हरिवंशराय बच्चन आदि ने प्रेमगीत लिखे हैं।

1.3.4.2 व्यंग गीत (Satire) :

कवि या गीतकार अपनी खुली आँखों से समाज को देखता है। वह समाज की खटकनेवाली बात पर, विसंगती पर मीठी चुटकी लेता है। अर्थात व्यंग्य के माध्यम से प्रहार करता है। इसमें उसकी भावना समाजसुधारक की होती हैं। व्यंग्यगीत को अंग्रेजी में Satire कहते हैं। व्यंग्यगीत के उदाहरण के रुपमें महाकवि निराला के 'कुकुरमुत्ता' कविता को ले सकते हैं। पूँजीपतियों द्वारा समाज का शोषण कैसे किया जाता है यह दिखलाया है। पूँजीपतियों के शोषण की वृत्तिपर व्यंग किया है। इसी प्रकार तुलसीदास ने भी 'परशुराम-संवाद' में अपनी व्यंग्य शक्ति का परिचय दिया है। इसी तरह नागार्जुन के 'प्रेत का बयान' तथा भवानीप्रसाद मिश्र की कविता 'गीत-फरोश' में भी व्यंग्य दिखाई देता है।

1.3.4.3 शोकगीत (Elegy) :

शोकगीत को अंग्रेजी में Elegy कहा जाता हैं। हिंदी में इसका सूत्रपात अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हुआ है।

शोकगीत में करूण रसकी प्रधानता होती है। इसी प्रधानता को देखकर कुछ विद्वान इसे 'करुण गीत' नामसे भी संबोधित करते हैं। शोक गीत के विषय में वैयक्तिक प्रेम विरह, निराशा, मानसिक क्षोभ, द्वेष, जाति का विनाश आदि हो सकते हैं। अपने किसी आत्मीय व्यक्ति की मृत्यु हो जानेपर या किसी महान नेता की मृत्यु हो जानेपर शोक विह्वल होकर जो कविता लिखी जाती है उसे 'शोकगीत' कहते हैं। शोकगीत में कृत्रिमता नहीं होती। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, आदि नेताओं की स्मृति में लिखे गये गीत शोकगीत के अंतर्गत आते हैं। शोकगीत के उदाहरणके रूप में महाप्राण निराला की 'सरोज-स्मृति' कविता को लिया जा सकता है। महाप्राण निराला की एकमात्र पुत्री सरोज की मृत्यु पर लिखी कविता शोकगीत का अनूठा उदाहरण है।

1.3.4.4 आख्यान गीति (Ballad) :

आख्यान गीति में किसी वीर योद्धा की वीरता का गुणगान होता है। इसे वीर गीत नाम से भी पहचाना जाता है। इसके वर्णन में प्रवाहमयता होती है। गति की स्वच्छंदता होती है। इस प्रकार के गीतों में कथा और संगीत का मिश्रण होता है। आख्यान गीतों की भाषा प्रसाद और ओज गुणों से युक्त होती है। आख्यान गीति में साहित्यिकता, नाट्यमयता, स्वाभाविकता होती है। इस गीत को सुनने के बाद पाठकों में भी उत्साह का संचार होता है। आख्यान गीति के उदाहरण के रूप में सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' नामक कविता को देखा जा सकता है।

1.3.4.5 संबोधन गीत (Ode) :

संबोधन गीत को अंग्रेजी में Ode (ओड) कहा जाता हैं। संबोधन गीत में गीतकार या कवि किसी को संबोधित करते हुए अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। इसकी शैली उदात्त होती है प्राचीन काल में भी किसी दूत, दूति अथवा पक्षी को संबोधित करके गीत लिखे जाते थे। कालिदास के 'मेघदूत' में यक्ष मेघ को संबोधित करके अपनी अवस्था का वर्णन करता है। निराला की 'यमुना के प्रति' कविता भी इसी प्रकार के अन्तर्गत आती है।

1.3.4.6 प्रयाण गीत (Marching Song) :

जब कोई सेना युद्ध के लिए निकलती है, तब उनका उत्साह बढाने के लिए जो गीत गाये जाते हैं उसे प्रयाण गीत कहते हैं। इस प्रकार के गीतों में एक लय होती है। अन्त: स्फूर्ति होती है। अंग्रेजी में इसे 'Marchins song' कहते है। जयशंकर प्रसाद का 'हिमाद्रि तुंग भृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' नामक प्रयाण गीत है।

1.3.4.7 राष्ट्र गीत :

आजकल राष्ट्र गीतों की रचना हो रही है। इस प्रकार के गीतों में राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना प्रकट की जाती है। इन गीतों में सांस्कृतिक महिमा का वर्णन होता है। इस प्रकार के गीतों के माध्यम से राष्ट्र का गौरवगान किया जाता है। राष्ट्रीय एकता को बढावा दिया जाता है। राष्ट्र गीतों से लोगों के बीच में चेतना जागृत की जाती है। जयशंकर प्रसादजी ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' नामक राष्ट्रीय गीत लिखा है। इस गीत में प्रसादजी ने भारत की प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक सुषमा का वर्णन किया है। इसी तरह पंत, मैथिलीशरण गुप्त, निराला आदि ने भी गीत लिखे हैं।

1.3.4.8 भक्ति गीत :

भक्ति गीत में अपने आराध्य के प्रति निष्ठा, आस्था, भक्तिभाव आदि का वर्णन होता है। भक्ति गीत में समर्पण भाव महत्त्वपूर्ण होता है। हिंदी में भक्तिकाल में इस प्रकार के गीतों का सृजन अधिक मात्रा में हुआ है। कबीर, तुलसी, मीराँ, सूरदास आदि के अनेक भक्तिगीत मिलते हैं।

1.3.4.9 लोकगीत :

लोकगीत अत्यंत सहज स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त किये जाते हैं, क्योंकि लोकगीतों के रचयिता अनपढ होते हैं। इसी कारण इन गीतों में अलंकरण की प्रवृत्ति कम होती है। इसमें सजीवता होती है। इस प्रकार के गीत शुद्ध गेयात्मक होते हैं। लोकगीतों में स्थानिय संस्कृति का चित्रण होता है। इसमें संगीततत्त्व प्रधान होता है। लोकगीत प्राय: सामूहिक रूप से गाये जाते हैं। अत: इसे 'कोरस गीत' भी कहते हैं। हिंदी में इस प्रकार के गीतों की संख्या बहुत कम है। लोकगीतों के अनेक प्रकार हैं जैसे - धार्मिक गीत, संस्कार गीत, उत्सवगीत, ऋतुगीत आदि।

1.3.4.10 चतुर्दशपदी (चतुर्दश-पदी) (Sonnet) :

चतुर्दश-पदी को अंग्रेजी में Sonnet (सॉनेट) कहा जाता है। चतुर्दशपदी यह पाश्चात्य ढंग के आधार पर लिखी जाती है। इसमें विशिष्ट नियमों के अनुसार लिखा जाता है। इसमें चौदह पंक्तियाँ होती हैं। चतुर्दशपदी में विचारतत्त्व की प्रधानता होती है। इस प्रकार के गीतों में भावना विस्तार के लिए कोई स्थान नहीं होता। भावनाओं पर नियंत्रण आवश्यक होता है। पंक्तियों की संख्या सीमित होने के कारण इस प्रकार के गीतों में कृत्रिमता की संभावना अधिक होती है। अंग्रेजी में शेक्सपीयर तथा मिल्टन ने सॉनेट लिखे हैं।

1.3.4.11 उपालंभ गीत :

उपालम्भ का अर्थ है - 'किसी अनुचित या अनिष्ट व्यवहार के कारण की जानेवाली शिकायत।' इस प्रकार के गीत प्रिय की निष्ठुरता के स्मरण से उत्पन्न होते हैं। इसमें प्रिय का उपेक्षाभाव हृदय को संतप्त कर देता है, तभी कोमल उलाहनों से युक्त गीत की सर्जना की जाती है। उपालम्भ गीत एक प्रकार से शिकायत गीत है। कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। उपालम्भ काव्य के उदाहरण के रूप में सूरदास के 'भ्रमरगीत' को देखा जा सकता है।

1.3.4.12 नृत्य गीत :

नृत्य करते-करते गाने के लिए लिखे गीत नृत्यगीत कहलाते हैं।

1.3.4.13 गीतिनाट्य :

नाटकीय प्रणाली पर आधारित गीत गीतिनाट्य होते हैं। इसमें कवि अपनी अनुभूतियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न पात्रोंद्वारा करवाता है। इसमें गीतिकाव्य और नाटक की विशेषताएँ होती हैं। जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय', निराला का 'पंचवटी प्रसंग', भगवतीचरण वर्मा का 'तारा' उत्कृष्ट गीतिनाट्य हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कइ प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं जैसे 'चरणगीत' 'पत्रगीत' 'गौरवगीत' आदि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकताहै कि प्रगीत काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रगीत काव्य

में आत्माभिव्यक्ति होती है। वह विभिन्न भावों के स्तर पर होती है। प्रगीत में भावों की प्रधानता के साथ विचारकी प्रधानता भी होती है। प्रगीत में प्रभावात्मकता, संगीतात्मकता होती है। प्रगीत काव्य मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान तथा शिक्षा देने का काम करता है। समाज को प्रेरित करता है। इसी कारण प्रगीत का काव्य के विभिन्न भेदों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

1.3.5 गजल :

भारतीय साहित्य के अंतर्गत गजल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह फारसी-उर्दू की लोकप्रिय विधा है। गजल शब्द मूलत: अरबी भाषा का है। अरबी भाषा में गजलें अधिक नहीं मिलती हैं। फारसी भाषा में गजलों का अधिक मात्रा में सृजन हुआ है। अपनी भावनाओं तथा विचारोंको प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम है - गजल। गजल का जब सूत्रपात हुआ तब उसमें श्रृंगारिकता को प्रधानता दी जाती थी। समय के साथ-साथ गजल के विषयों में विविधता आने लगी। हिंदी में १३ वीं शताब्दी से गजलें मिलती हैं। गजल यह विधा फारसी से हिंदी तथा उर्दू में आयी है। आधुनिक युग में गजल जीवन के कडुवे सच को प्रस्तुत करती है।

1.3.5.1 गजल शब्द का अर्थ :

गजल शक्द की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों में एकमत नहीं है। गजल यह अरबी भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ है - 'प्रेमिका से वार्तालाप' या औरतों से बातें करना। गजल का केंद्रिय विषय प्रेम होता है। गजल के बारे में और एक शब्द मिलता है - 'गजाल'। 'गजाल' का अर्थ है - 'मृग'। संभव है हिरन जैसी आँखोवाली सुन्दरियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया हो। गजल शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में और एक मान्यता है कि अरब में गजल नाम का एक कवि था। इस कविने अपने पूरे जीवन में प्रेम को महत्त्व दिया, प्रेमपूरक कविता लिखी। अत: उसीके नाम पर इस विधा का नामकरण हुआ।

मानक हिन्दी शब्दकोष खंड दो में गजल शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है - 'वह कविता जिसमें नायिका के सौंदर्य और उसके प्रेम के प्रति वर्णन हो। गजल के बारे में अंग्रेजी में भी कहा गया है कि 'The Conversation with women.'

'गजल' शब्द प्रेमी और प्रेमिका के वार्तालाप के लिए या और के बात करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ था, लेकिन अब उसमें परिवर्तन आया है, विविध विषयों को लेकर गजलें लिखी जा रहीं है।

1.3.5.2 गजल की परिभाषाएँ :

साहित्य के अंतर्गत हर विधा को परिभाषित करने की एक परंपरा दिखाई देती है। गजल जैसी प्रेमाभिव्यक्ति की विधा इससे कैसी अछूती रह सकती है? गजल शब्द की व्युत्पत्ति या अर्थ के बारे में विद्वानों में मतभेद दिखाई देते हैं, लेकिन उनमें इस बातपर एकमत हो गया है 'गजल प्रेमाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है।' अनेक विद्वानों ने अपनी - अपनी प्रतिभा के अनुसार गजल को परिभाषित करने का प्रयास किया है। गजल की परिभाषाएँ निम्नांकित हैं -

1.3.5.2.1 नालंदा विशाल शब्द सागर : नालंदा विशाल शब्दसागर में 'फारसी और उर्दू में श्रृंगार रस की कविता' कहा है।

1.3.5.2.2 हिंदी साहित्य कोश भाग एक : हिंदी साहित्य कोश भाग एक में गजल के बारे में लिखा है कि, ''गजल में प्रेमभावनाओं का चित्रण होता है। गजल का शाब्दिक अर्थ है - नारियों से प्रेम की बातें करना।''

1.3.5.2.3 फिराख गोरखपुरी : ''गजल असंबद्ध कविता है। गजल का मिजाज मूलत: समर्पणवादी होता है।''

1.3.5.2.4 डॉ. अर्शद जमाल : ''गजल का मतलब है औरतों से अथवा औरतों के बारे में बातचीत करना। यह भी कहा जा सकता है कि गजल का सर्वसाधारण अर्थ है - माशूक से बातचीत का माध्यम।''

1.3.5.2.5 डॉ. नगेंद्र : ''गजल उर्दूकाव्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है। उसका स्थायी भाव प्रेम है, जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ति, रिन्दी, धार्मिक-विद्रोह आदि भावनाएँ संचारी रूप से ओत-प्रोत रहती हैं, विषय के अनुरूप उसका एक विशिष्ट काव्यरूप भी है जो मतला, मकता, काफिया रदीफ में परिबद्ध रहता है।''

1.3.5.2.6 डॉ. सरदार मुजावर : ''मन के भावों को शेरों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कला का नाम है - गजल।''

1.3.5.2.7 डॉ. मधु खराटे : ''गजल वह गेयान्मक विधा है, जिसमें प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण किया जाता है। साथही जिसमें सामाजिक, राजनीतिक एवं हास्य-व्यंगात्मक भावभूमि पर सामान्य व्यक्ति के मानस में दबी पीडा को वाणी प्रदान की जाती है, जो प्रभावोत्पादक गुणों से युक्त होती है और जिसका अपना एक रूप होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधारपर यही कहा जा सकता है कि, गजल गेयात्मक विधा है। गजल मन के भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। गजल के अनेक विषय हो सकते हैं। गजल में व्यंग्यात्मकता भी होती है। गजल में प्रेम के दोनों पक्षों का चित्रण होता है। अर्थात् संयोग और वियोग का चित्रण होता है। गजल में साधारणत: चौदह पंक्तियाँ होती है। संक्षिप्तता और भावात्मकता यह गजल की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। गजल पाठकों के मन तथा मस्तिष्क पर प्रभाव डालती हैं।

1.3.5.3 गजल के अंग :

संसार की किसी भी वस्तु का या पदार्थ का अपना एक रूप होता है, जिससे उसकी पहचान बनती है। केवल भाव या भाषा के आधार पर किसी रचना को रचना नहीं कहा जाता। हर रचना का अपना एक अलग रूप होता है। गजल का भी अपना एक रूप है। साहित्य के अन्य विधाओं के जिस प्रकार अलग-अलग अंग दिखाई देते हैं उसी तरह गजल के भी अंग हैं। गजल के निम्नांकित अंग हैं -

1.3.5.3.1 काफिया : गजल में पायी जानेवाली तुक को काफिया कहते हैं। गजल के शेरों में रदीफ से पहले जो अंत्यानुप्रास शब्द आते हैं और जिसका प्रयोग तुक मिलाने की दृष्टि से किया जाता है, काफिया कहलाता है। गजल में रदीफ की अपेक्षा काफिया का महत्त्व होता है।

उदा. : 1) ''मेरा दर्द तो नशों का अब गुलाम हो गया है,
कभी गीत बन गया है, कभी जाम हो गया है,
करो माफ जिन्दगी को कोई और खेल खेलो
यह समाज का खिलौना बडा आम हो गया है।''

उपर्युक्त शेरों में 'गुलाम' 'जाम' तथा 'आम' आदि शब्द काफिया के रूप में प्रयुक्त किये गए हैं।

उदा. : 2) ''आदमी में आदमीयत का असर पैदा करें।
प्यार की खुश्बू से महके वह जिगर पैदा करें।
जिसपर चलकर हम वहाँ पहुँचे जहाँ अम्न हो,
आओ मिलकर यार अब ऐसी डगर पैदा करें।''

उपर्युक्त शेरों में 'असर' 'जिगर' तथा 'डगर' शब्दों का प्रयोग काफिया के रूप में किया है।

1.3.5.3.2 रदीफ : गजल के शेरों के अंत में जिन शब्दों कही पुनरावृत्ति होती है उसे रदीफ कहते हैं। रदीफ काफिये के बाद आती है। और प्रत्येक शेर में अपनी जगह पर स्थिर रहती है। उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। अधिकतर गजलों में रदीफ का प्रयोग होता है। अपवादात्मक रुप में गजल में रदीफ का प्रयोग नहीं किया जाता। रदीफ गजल के लिए विशेष आवश्यक है ऐसा भी नहीं है।

उदा. : 1) ''क्या बात थी कि जो भी सुना, अनसुना हुआ
दिल के नगर में शोर था कैसा मचा हुआ,
सोया था एक पल को दुनिया बदल गई
उट्ठा तो सोचता हूँ, ये दुनिया को क्या हुआ।''

उपर्युक्त गजल के शेरों में 'हुआ' शब्द का प्रयोग रदीफ के रूप में किया गया है।

1.3.5.3.3 शेर : शेर यह शब्द अरबी भाषा का है, जिसका शाब्दिक अर्थ है - 'केश या बाल।' जिस प्रकार किसी सुंदर युवती की सुन्दरता बढाने के लिए केश या बाल सहायक होते हैं वैसे ही किसी गजल के भावसौंदर्य के लिए उसके शेरों का जानदार होना आवश्यक होता है। गजल के प्रत्येक शेर का अपना स्वतंत्र भावचित्र अंकित करता है। इसी कारण शेर को 'गजल की अधिकारिक इकाई' कहा जाता है।

उदा. : ''मेरे सीने में न सही, तेरे सीने में सही।
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।''

उपर्युक्त शेर में दुष्यंत कुमारजीने क्रांति या परिवर्तन की आग का जिक्र किया है।

गजल के शेर के दो रूप दिखाई देते हैं - 1) मतला और 2) मकता।

1) मतला : गजल का पहला शेर मतला कहलाता है। इनकी दो पंक्तियों में रदीफ और काफिया होता है, जब कि अन्य शेरों की दूसरी पंक्ति में ही यह विशेषता पायी जाती है।

उदा. : ''अश्क वहीं जो तारा बनकर पलकों पर थर्राता है
दर्द वहीं जो मीठे-मीठे गीतों में ढल जाता है।''

उपर्युक्त शेर की दोनों पंक्तियों में 'थर्राता' 'जाता' काफिया है। तथा 'है' रदीफ का प्रयोग मिलता है। जिससे दोनों पंक्तियों में तुक मिलती है। अत: यह शेर गजल का मतला कहा जायेगा।

2) मकता : गजल के अंतिम शेर को 'मकता' कहते हैं। अरबी में मकता का शाब्दिक अर्थ है - 'कटा हुआ।' इसमें कवि अपने उपनाम का प्रयोग करता है। यह उपनाम पढते ही हम समझ जाते हैं कि यहाँ गजल पूरी हो गयी हो। यहाँ पर गजलकार के भावों की सीमा (चरमसीमा) का महत्त्व होता है। यह गजल का सर्वश्रेष्ठ शेर माना जाता है। अगर किसी गजल के समाप्ति पर अंतिम शेर में उपनाम न हो तो उसे केवल गजल का आखिरी शेर कहा जाता है।

उदा. : ''हमको मालूम है, जन्नत की हकीकत, लेकिन
दिल के खुश रखने को 'गालिब' यह ख्याल अच्छा है।''

उपर्युक्त शेर में 'गालिब' उपनाम का प्रयोग किया गया है। अत: इसे मकता कहा जायेगा।

1.3.5.3.4 मिसरा : शेर के प्रत्येक पंक्ति को मिसरा कहते हैं। दो मिसरे मिलकर एक शेर की संरचना होती है। शेर के दूसरे मिसरे में रदीफ एवं काफिये का प्रयोग किया जाता है।

उदा. : ''मजा तो ये है कि होते हैं वो जो मुझसे खफा,
तो और आता है उनपर जियाद प्यार मुझे।''

उपर्युक्त शेर की दोनों पंक्तियों मे अलग-अलग मिसरे हैं। अंतिम मिसरे में 'प्यार मुझे' में रदीफ और काफिया का प्रयोग मतले के आधारपर किया गया है।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि, गजल अरबी भाषा का शब्द है, व्युत्पत्ति की दृष्टि से भलेही उसके अर्थ अलग-अलग होंगे। गजल एक स्वतंत्र विधा है। गजल में काफिया, रदीफ का महत्त्व होता है। गजल में प्रत्येक अंग का अपना अपना महत्त्व है। शेर को गजल की अधिकारिक इकाई माना गया है। शेर के दो भेदों में मतला और मकता का भी उतनाही महत्त्व है जितना कि अन्य अंगों का। गजल में गेयता होती है। गजल में प्रवाहमयता, भावात्मकता, प्रभावात्माकता की आवश्यकता होती है।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. महाकाव्य ..... काव्य का एक भेद है।
   (मुक्तक/प्रगीत/एकार्थ/प्रबंध)

2. महाकाव्य …… रचना है।
(सर्गमुक्त/रीतियुक्त/रीतिबद्ध/सर्गबद्ध)

3. महाकाव्य का नायक …… होना चाहिए।
(धीरोद्धत्त/धीरप्रशांत/धीरोदात्त/धीरललित)

4. महाकाव्य को अंग्रेजी में …… कहते हैं।
(Epic / Elegy / ode/ Drama)

5. महाकाव्य में …… से अधिक सर्ग होते हैं।
(सात/आठ/दस/बीस)

6. महाकाव्य में …… का प्रकाशक होता है।
(लघुता/अलंकारिकता/अपूर्णता/महानता)

7. महाकाव्य में प्रतिनायक (खलनायक) के …… का चित्रण होता है।
(विजय/पराजय/कोमलता/धीरोदात्तता)

8. आचार्य भामह ने …… ग्रंथ में महाकाव्य विषयक चिंतन प्रस्तुत किया है।
(काव्यादर्श/काव्यालंकार/काव्यालंकार सूत्र/काव्यदर्पण)

9. महाकाव्य का उद्देश्य …… होता है।
(लघु/विस्तृत/महान/सीमित)

10. आचार्य दण्डी ने …… ग्रंथ में महाकाव्य विषयक चिंतन किया है।
(काव्यालंकार सूत्र वृत्ति/काव्यालंकार/काव्यशोभा/काव्यादर्श)

11. आचार्य विश्वनाथ के काव्य ग्रंथ का नाम …… है।
(समर्पण/साहित्यदर्पण/नाट्यदर्पण/हितोपदेश)

12. …… ने महाकाव्य विषयक विवेचन में गुरुत्व, गांभीर्य तथा महानता को विशेष स्थान दिया है।
(डॉ. नगेंद्र/डॉ. गुलाबराय/डॉ. शंभूनाथ सिंह/रामचंद्र शुक्ल)

13. 'महाकाव्य दीर्घकाल का कथात्मक अनुकरण है' यह मत …… का है।
(एबरक्राम्बे/अरस्तू/वॉल्टेअर/इलियट)

14. पाश्चात्य दृष्टि में एपिक …… काव्य है।
(छंदयुक्त/रसमुक्त/वर्णनात्मक/अलंकारप्रधान)

15. आचार्य विश्वनाथ के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और …… की प्राप्ति महाकाव्य का बृहत्तर उद्देश्य है।

(मोक्ष/ममता/करुणा/संवेदना)

16. एवरक्राम्बे के अनुसार महाकाव्य के ..... भेद हैं।
(पाँच/दो/तीन/चार)

17. प्रगीत को अंग्रेजी में ..... कहा जाता है।
(Poetics / Sonnet / Lyric / Ode)

18. वैयक्तिकता यह ..... की विशेषता है।
(खंडकाव्य/प्रगीतकाव्य/महाकाव्य/चंपूकाव्य)

19. प्रगीत काव्य ..... के अंतर्गत आता है।
(महाकाव्य/खंडकाव्य/मुक्तक काव्य/गजल)

20. व्यंग्यगीत को अंग्रेजी में ..... कहते हैं।
(Ode / Sonnet / Satire / Marching Song)

21. शोकगीत को अंग्रेजी में ..... कहते है।
(Elegy / Ballad / Lyric / Satire)

22. किसी वीर योद्धा का गुणगान ..... गीत में होता है।
(आख्यान गीति/संबोधन गीत/शोकगीत/प्रेमगीत)

23. जब कोई सेना युद्ध के लिए निकलती है, तब उनका उत्साह बढाने के लिए ..... गीत गाये जाते है।
(प्रयाण गीत/संबोधन गीत/विलापिका/नृत्यगीत)

24. राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना ..... में होती है।
(भक्तिगीत/उपालंभ गीत/राष्ट्र गीत/धार्मिक गीत)

25. ..... गीतों में स्थानिय संस्कृति का चित्रण होता है।
(लोक/भक्तिगीत/व्यंग्यगीत/संबोधनगीत)

26. चतुर्दशपदी को अंग्रेजी में ..... कहते है।
(Sonnet / Ode / Lyric / Ballad)

27. संबोधन गीत को अंग्रेजी में ..... कहते है।
(Marching Song / Ballad / Ode / Elegy)

28. अपने आराध्य के प्रति निष्ठा, आस्था, भक्तिभाव ..... गीतों में होता है।
(राष्ट्रीय गीत/नृत्यगीत/भक्तिगीत/लोकगीत)

29. ..... गीत को 'कोरस गीत' भी कहा जाता है।
(लोकगीत/व्यंग्य गीत/प्रेमगीत/नृत्यगीत)

30. शोकगीत में ..... रस की प्रधानता होती है।
(करुण/वीर/श्रृंगार/शांत)

31. सॉनेट (चतुर्दशपदी) में ..... पंक्तियाँ होती है।
(दस/बारह/तेरह/चौदह)

32. ..... में बुद्धि से अधिक हार्दिक भावनाओं का महत्त्व होता है।
(चंपू काव्य/महाकाव्य/प्रगीतकाव्य/खंडकाव्य)

33. गजल ..... भाषा का शब्द है।
(अरबी/फारसी/पंजाबी/हिंदी)

34. 'काफिया' का अर्थ ..... है।
(तुक/गजल/मतला/मकता)

35. शेर शब्द का अर्थ है ..... ।
(केश/आँखे/कान/नाक)

36. फारसी और उर्दू में श्रृंगार रस की कविता ..... कलहाती है।
(गीत/गजल/तश्बीब/रदीफ)

37. गजल का शाब्दिक अर्थ ..... है।
(प्रेमिका से वार्तालाप/उत्कट भाव/वाणी/हाथी)

38. गजल के पहले शेर को ..... कहते हैं।
(काफिया/मतला/मकता/रदीफ)

39. गजल नामक कवि के नाम से ..... विधा का निर्माण हुआ।
(प्रेमकाव्य/श्रृंगारकाव्य/गीत/गजल)

40. गजल के अंतिम शेर को ..... कहते हैं।
(शेर/रदीफ/मकता/मतला)

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **इतिवृत्तात्मकता** - घटनाप्रधानता
2. **गुरुत्व** - बडप्पन, श्रेष्ठता, महानता
3. **सर्गबद्ध** - सर्गो में बंधा हुआ

4. **सर्ग** - अध्याय, प्रकरण

5. **धीरोदात्त** - भावनाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखनेवाला नायक

6. **मंगलाचरण** - ग्रंथ के प्रारंभ में लिखा जानेवाला मांगलिक पद

7. **कोमलकांत पदावली** - मृदु कोमल वर्णों से युक्त पदावली

8. **प्रबंध** - काव्य का एक भेद

9. **मुक्तक** - काव्य का वह भेद जिसमें वर्णित बातों का कोई पूर्वापर संबंध न हो।

10. **उपालंभ** - किसी के अनुचित या अशिष्ट व्यवहार के कारण उससे की जानेवाली शिकायत/उलाहना

11. **रदीफ** - गजलों आदि में प्रत्येक काफिए या अंत्यानुप्रास के बाद आनेवाला शब्द या शब्दसमूह।

12. **मिसरा** - उर्दू, फारसी आदि की कविता में किसी कविता आदि का आधारभूत पहला चरण।

13. **काफिया** - कविता या पद्य में अंतिम चरणों में मिलाया जानेवाला अनुप्रास/अंत्यानुप्रास/तुक

1.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. प्रबंध	2. सर्गबद्ध	3. धीरोदात्त	4. Epic	5. आठ
6. महानता	7. पराजय	8. काव्यालंकार	9. महान	10. काव्यादर्श
11. साहित्यदर्पण	12. डॉ. शंभूनाथ सिंह	13. अरस्तू	14. वर्णनात्मक	15. मोक्ष
16. दो	17. Lyric	18. प्रगीतकाव्य	19. मुक्तक काव्य	20. Satire
21. Elegy	22. आख्यान गीति	23. प्रयाण गीत	24. राष्ट्र गीत	25. लोकगीतों में
26. Sonnet	27. Ballad	28. भक्तिगीत	29. लोकगीत	30. करुण
31. चौदह	32. प्रगीत काव्य	33. अरबी	34. तुक	35. केश
36. गजल	37. प्रेमिका से वार्तालाप	38. मतला	39. गजल	40. मकता

1.7 सारांश :

1. प्रबंध काव्य का हिंदी साहित्य में अनूठा स्थान है। प्रबंध काव्य के अंतर्गत महाकाव्य और खंडकाव्य आते हैं।

2. महाकाव्य विषयक भारतीय तथा पश्चिमी विद्वानों ने चिंतन किया है। यह चिंतन मौलिक तथा नवीन है। जिससे महाकाव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा सकता है। महाकाव्य महानता का प्रकाशक होता है।

3. महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक तथा सज्जनाश्रित होती है। महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य के भारतीय तत्त्वों में कथावस्तु, नायक, रस, छंद, वर्णन, नाम (शीर्षक), उद्देश आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से किसी एक के अभाव में महाकाव्य की सफलता में क्षति पहुँच सकती है।

4. महाकाव्य के लिए अंग्रेजी में Epic शब्द मिलता है। एपिक वर्णनात्मक होता है। एपिक के पाश्चात्य तत्त्वों में कथानक, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, वर्णन, शैली, उद्देश आदि चार तत्त्व महत्त्वपूर्ण होते हैं।

5. प्रगीत काव्य को गीतिकाव्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है। प्रगीत काव्य में स्वतंत्र भाव होता है। प्रगीत को अंग्रेजी में Lyric कहा जाता है। प्रगीत काव्य के तत्वों में संगीतात्मकता, तीव्र भावानुभूति, आत्माभिव्यक्ति, रागात्मक अन्विति, प्रवाहमयी शैली सहज अन्त:प्रेरणा का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

6. प्रगीत काव्य के अनेक भेद किए गये हैं जैसे प्रेमगीत, व्यंग्यगीत, अख्यानगीत, शोकगीत, संबोधनगीत, प्रयाणगीत, आख्यान गीत, राष्ट्रीय गीत, भक्तिगीत, लोकगीत, चतुर्दशपदी आदि।

7. प्रेमाभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में गजल को देखा जाता है। गजल यह अरबी भाषा का शब्द है। उसका शाब्दिक अर्थ प्रेमिका से बातचीत, वार्तालाप, या औरतों से बात करने के अर्थ में लिया जाता है। गजलकार कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को भर देता है। गजल में लयबद्धता होती है। काफिया, रदीफ, शेर मिसरा आदि गजल के अंग हैं।

1.8 स्वाध्याय :

1. महाकाव्य के भारतीय तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. महाकाव्य विषयक पाश्चात्य मान्यता बताते हुए पश्चिमी तत्त्वों का विवेचन कीजिए।
3. प्रगीत का स्वरूप बताकर तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।
4. प्रगीत का स्वरूप बताकर प्रगीत के भेदों को संक्षेप में लिखिए।
5. गजल की परिभाषा देकर अंगों का सामान्य परिचय दीजिए।
6. महाकाव्य का भारतीय स्वरूप स्पष्ट करते हुए महाकाव्य के भारतीय तत्त्वों का विवेचन कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. महाकाव्य विषयक विभिन्न मान्यताओं के आधार पर किसी भी महाकाव्य की समीक्षा कीजिए।
2. रामचरितमानस, पद्मावत, साकेत, कामायनी, कुरुक्षेत्र आदि महाकाव्यों का अध्ययन कीजिए।
3. प्रगीत के विभिन्न भेदों को ध्यान में रखकर उसके उदाहरण ढूँढ लीजिए।
4. किसी भी गजलकार की गजल की किताब पढिए।
5. मराठी भाषा की महाकाव्य, गीत तथा गजल विधाओं का अध्ययन कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. काव्यशास्त्र : भगीरथ मिश्र
2. साहित्यशास्त्र : डॉ. संजय नवले

3. काव्यशास्त्र विविध आयाम : सं. डॉ. मधु खराटे
4. भारतीय काव्यशास्त्र : डॉ. अशोक के शाह
5. साहित्य-विवेचन : क्षेमचंद्र सुमन, योगेंद्रकुमार मल्लीक
6. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र : डॉ. यतीन्द्र तिवारी
7. साहित्य रूप : शास्त्रीय विश्लेषण : डॉ. ज्ञानराज गायकवाड
8. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र : डॉ. रामप्रकाश
9. हिंदी गजल : उद्‌भव और विकास : डॉ. रोहिताश्व अस्थाना
10. हिंदी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर : प्रा. मधु खराटे
11. हिंदी गजल गजलकारों की नजर में : डॉ. सरदार मुजावर

○●○

सत्र VI : इकाई 2

गद्य विधाएँ

(नाटक, उपन्यास और डायरी)

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय-विवेचन

2.3.1 नाटक - पश्चिमी तत्त्व

2.3.2 उपन्यास

2.3.2.1 स्वरुप

2.3.2.2 तत्त्व

2.3.2.3 प्रकार

2.3.3 डायरी

2.3.3.1 स्वरुप

2.3.3.2 तत्त्व

2.3.3.3 प्रकार

2.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

1. हिंदी नाटक, उपन्यास एवं डायरी के विविध मानदंडो के आधार पर छात्रों में समीक्षण की क्षमता निर्माण करना।

2. छात्रों की हिंदी नाटक, उपन्यास एवं डायरी के आस्वादन की क्षमता विकसित करना।

3. साहित्य कृतियों के माध्यम से साहित्य के शिल्प एवं सौंदर्य से परिचित कराना।

4. नाटक के पश्चिमी तत्त्वों से परिचित कराना।

5. उपन्यास और डायरी के स्वरूप, तत्त्व और प्रकारों से परिचित कराना।

6. गद्य की प्रमुख विधाओं के तात्त्विक स्वरूप का परिचय देना।

7. रचना के आस्वादन एवं समीक्षण की क्षमता विकसित करना।

8. डायरी के माध्यम से उसमें व्यक्त व्यक्तित्त्व को समझ लेने का प्रयत्न करेंगे।

2.2 प्रस्तावना :

भारतेन्दु युग में गद्य की अनेक विधाओं का प्रस्फुटन हुआ। उपन्यास, नाटक, कहानी, डायरी, निबंध, एकांकी आदि गद्य विधाओं का विकास आधुनिक काल में हुआ। इनमें से इस पाठ्यक्रम में नाटक, उपन्यास और डायरी विधाओं का समावेश किया गया है। इन विधाओं के तात्त्विक विवेचन के बारे में हमें यहाँ सोचना है। नाटक के पश्चिमी तत्त्व, उपन्यास का स्वरूप तथा उपन्यास के तत्त्व और प्रकार, डायरी का स्वरूप तथा तत्त्व और प्रकार आदि तात्त्विक मुद्दों के संदर्भ में हमें प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करना है।

2.3 विषय विवेचन :

नाटक, उपन्यास एवं डायरी इन गद्य विधाओं का तात्त्विक विवेचन हम निम्न मुद्दों के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं -

2.3.1 नाटक : पाश्चात्य तत्व

आधुनिक काल की विभिन्न विधाओं में 'नाटक' सर्वाधिक प्रसिद्ध विधा मानी जाती है। विविध विद्वानों द्वारा दिए गए तत्त्वों के आधार परही नाटक का विकास हुआ है। पाश्चात्य विद्वानों ने निश्चित किए गए तत्त्व निम्न प्रकार हैं -

पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियों के अनुसार नाटक के सात तत्त्व इस प्रकार हैं -

1) कथावस्तु 2) पात्र-चरित्र-चित्रण 3) कथोपकथन या संवाद 4) देश-काल-वातावरण
5) उद्देश्य 6) भाषाशैली 7) अभिनय

1) कथावस्तु :

पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियों ने नाटक के कथानक को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। अरस्तू ने कथानक को नाटक कि

आत्मा कहकर उसकी विशेषताएँ बताते हुए स्पष्ट किया है कि वह अपने आप में समग्र और पूर्ण होना चाहिए। प्रेक्षक का आकर्षण बना रहने के लिए नाटक की कथावस्तु सुव्यवस्थित, परिमार्जित तथा संक्षिप्त होनी चाहिए। नाटक की कथावस्तु इतनी सूक्ष्म नहीं होनी चाहिए कि प्रेक्षक के मन में उसका बिम्ब न बन सके और न इतनी विराट हो कि वह मन में समा न सके।

सहज विकास और कुतूहल को अरस्तू ने कथावस्तु का महत्त्वपूर्ण गुण माना है। अरस्तू ने साधारणीकरण को प्रबन्ध कल्पना का मूल आधार मानकर बताया है कि कथानक की एक सार्वभौम रूपरेखा बना लेनी चाहिए जिसके साथ सभी का तादात्म्य हो सके। अरस्तू के मतानुसार जो घटनाएँ असंभाव्य हैं उन्हे कथावस्तु में स्थान नहीं मिलना चाहिए; क्योंकि वे मानव-मन को प्रभावित नहीं कर सकती।

नाटक में कथाविकास या कार्यव्यापार की दृष्टि से पाँच अवस्थाएँ मानी जाती हैं -

1) प्रारम्भ : नाटक के प्रारम्भ में मुख्य फल की इच्छा का प्रकट होना ही प्रारभ है।

2) प्रयत्न : मुख्य फल की प्राप्ति के लिए संघर्ष तथा यत्न करना 'प्रयत्न' है।

3) प्राप्त्याशा : यहाँ प्रयत्नों के परिणामस्वरूप मुख्यफल के प्राप्त होने की सम्भावना हो जाय, वहाँ 'प्राप्त्याशा' है।

4) नियताप्ति : जब सभी विघ्नों के दूर हो जाने पर मुख्यफल की प्राप्ति निश्चित हो जाय, तब वहाँ 'नियताप्ति' होती हे।

5) फलागम : जब सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाय तो वह 'फलागम' अवस्था कहलाती है।

कथावस्तु को प्रभावशाली बनाने के लिए उसे पाँच अवस्थाओं में विभाजित किया गया है।

1) प्रारम्भिक अवस्था : नाटक का प्रारम्भ प्रस्तावना द्वारा अथवा बिना प्रस्तावना के दोनों प्रकार से किया जा सकता है। प्रारम्भिक घटना रोचक और नाटकीय होनी चाहिए। प्रारम्भ से ही कौतुहल उत्पन्न किया जाता है और कार्यों का पूर्वापर संबंध जोडकर कौतुहल की सृष्टि की जाती है।

2) विकास : इसमें उन परिस्थितियों और घटनाओं को प्रस्तुत किया जाता है जो किसी नई समस्या को जन्म देती हैं।

3) चरमसीमा : संघर्ष और उसकी चरमसीमा वे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जिनपर पाश्चात्य नाटक की शक्ति और प्रभाव निर्भर करता है।

4) उतार या निगति : इसमें एक पक्ष की विजय निश्चित हो जाने से कथावस्तु में उतार आ जाता है। इस स्थिति में आकर घटनाएँ सुलझने लगती हैं। परिणाम की ओर अग्रेसर होनेवाली कथावस्तु की गति धीमी पड जाती है।

5) अन्त या समाप्ति : यह समाप्ति अवस्था है। घटना-चक्र की सम्पूर्ण समाप्ति सभी संघर्षों को अन्तिम रूप प्रदान कर उद्देश्य को उजागर कर देती है। समस्या का समाधान हो जाता है।

2) पात्र तथा चरित्र - चित्रण :

नाटक की सजीवता एवं प्रभावकारिता में 'चरित्र चित्रण' का विशेष महत्त्व है। जहाँ तक हो सके प्रत्येक पात्र का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक होना चाहिए। अपने विचारों को नाटककार पात्रों के माध्यम से अभिव्यस्त करता है। नाटक में पात्र तथा चरित्र चित्रण का विशेष महत्त्व है। सामान्यत: नाटक में नायक, प्रतिनायक, नायिका तथा शेष अन्य स्त्री-पुरुष पात्र के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

वास्तव में 'नायक' ही नाटक की कथावस्तु को आगे बढाता है। 'प्रतिनायक' नायक का विरोधी या 'खलनायक' होता है, जो नायक के मार्ग पर रोडे अटकाता है, संघर्ष करता है। 'नायिका' नायक की 'पत्नी ' अथवा 'प्रेयसी' होती है, जो नायक को प्रेरणा देती है और नाटक में आकर्षण का केंन्द्र बनी रहती है। इनके अतिरिक्त अन्य पात्र नायक अथवा प्रतिनायक के सहायक रूप में आते हैं।

नाटककार कथावस्तु, घटनाओं और कथोपकथन के द्‌वारा ही पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन करता है। चरित्र-चित्रण की तीन प्रमुख विधियाँ हैं -

1) कथोपकथन द्‌वारा

2) स्वगत कथन द्‌वारा

3) पात्रों के कार्य कलाप द्‌वारा

नाटककार को यह ध्यान देना पडता है कि उसके पात्र स्वाभाविक ढंग से विकसित हो रहे हैं या नहीं। वह अपने पात्रों को अपने हाथ की कठपुतली नहीं बनाता। नाटककार जिन पात्रों के चरित्र में आकस्मिक परिवर्तन करता है, उसका मनावैज्ञानिक कारण भी देता है। चरित्र चित्रण के छ: आधारभूत सिद्‌धांतों का प्रतिपादन करते हुए अरस्तू ने उन्हें संभाव्य तथा भव्य यथार्थ की संज्ञाएँ प्रदान की हैं।

1) भद्रता : अरस्तू ने चरित्रों की विशेषताओं में भद्रता को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है। भद्रता ऐसा नैतिक गुण है जो वर्ग-भेद, सामाजिक स्थिति आदि से अप्रभावित रहता है।

2) औचित्य : पात्रांकन में उसकी प्रकृति तथा वर्गगत विशेषताएँ रहनी चाहिए और इन्ही के द्‌वारा औचित्य की रक्षा होती है।

3) जीवनानुरूपता : अरस्तू का मानना है कि, चरित्र जीवन के अनुरूप होने चाहिए। इस गुण को अरस्तू ने भद्रता और औचित्य से भिन्न माना है। वे पात्रों को जीते-जागते, स्वाभाविक और यथार्थवादी रूप में सक्रिय होते देखना चाहते हैं।

4) एकरूपता : चरित्र में एकरूपता होनी चाहिए। हो सकता है कि मूल अनुकार्य के चरित्र में ही अनेकरूपता हो लेकिन फिर भी, वह अनेकरूपता ही एकरूप होनी चाहिए।

5) संभाव्यता : कथानक के संगठन की भाँति चरित्र- चित्रण में भी कवि को सदैव संभाव्य को ही अपना

लक्ष्य बनाना चाहिए। जैसे संभाव्य पूर्वापर क्रम से एक के बाद दूसरी घटना आती है, वैसे ही संभावना नियम के अधीन विशिष्ट चरित्र के व्यक्ति को अपने ही विशिष्ट ढंग से बोलना या काम करना चाहिए।

6) भव्य सामर्थ्य : कलाकार को कल्पना और भावना के द्‌वारा लक्ष्यार्थ को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए की वह सुन्दर बन जाए तथा उसमें एक नवीन आकर्षण उत्पन्न हो सके। त्रासदी के पात्र यथार्थ तो हो; किंन्तु साधारण न बन जाएँ। उनमें एक भव्य आकर्षण अवश्य होना चाहिए, जिसे भव्य यथार्थ कह सकते हैं।

3) कथोपकथन या संवाद :

नाटककार की कुशलता एवं अभिव्यक्ति शैली के दर्शन कथोपकथन या संवाद में होते हैं। कथोपकथन या संवाद को नाटक का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। संवाद जितने ही चुस्त, फडकते हुए, प्रभावशील एवं सूक्ष्म होंगे, नाटक उतना ही चमत्कारपूर्ण लगेगा। उत्तम कथोपकथन में सरलता, सुन्दरता, धारावाहिकता, संक्षिप्तता, पात्रानुरुपता, सार्थकता, चतुरता एवं चमत्कारिता के गुण होते हैं। संवादों द्‌वारा पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पडता है और कथावस्तु को गति मिलती है। नाटककार को इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि उसके पात्र एक भी अनावश्यक वाक्य न बोले, अन्यथा रोचकता में न्यूनता आ जाती है।

प्राचीन भारतीय अचार्यों ने संवाद के तीन भेद बतलाए हैं -

1) सर्वश्राव्य : इस प्रकार के संवाद सबको सुनाने के लिए होते हैं।

2) नियतश्राव्य : इसमें कुछ निश्चित पात्रों को सुनाने के लिए संवाद होते हैं। उसमें कुछ गोपनीयता होती है। यह दो प्रकार के होते हैं -1) अपवारित 2) जनान्तिक.

3) अश्राव्य : इसमें कोई पात्र अपने अन्तर्द्रन्द्व को स्वत: प्रकट करता है, मानो वह किसी को सुना नहीं रहा। इसे ही 'स्वगत कथन' कहते हैं। इसी को 'आकाशभाषित' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें पात्र आकाश की ओर देखता हुआ स्वयं अपने से ही बातें करता है।

4) देश-काल-वातावरण :

ऐतिहासिक नाटक हो अथवा सामाजिक उसमें देश, काल परिस्थिति का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष चित्र अवश्य रहता है। पात्र जिन घटनाओं और समस्याओं को रंगमंच पर प्रस्तुत करते हैं वे भी किसी समाज विशेष के काल विशेष में सजीव होनेवाले अंग होते हैं; इस प्रकार वातावरण का चित्रण नाटक का अनिवार्य अंग है। देश, काल, वातावरण के अनुकूल चित्रण स्वाभाविक माना जाता है। वांछित प्रभाव डालने के लिए ऐतिहासिक नाटकों में उस युग के रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेश-भूषा, सम्बोधन और सांस्कृतिक जीवन के उन तत्त्वों को उभारना होता है जिनकी सहायता से दर्शक के लिए यथार्थ का भ्रम उत्पन्न किया जा सके।

पात्रों के अभिनय को जिवंत बनाने एवं कथावस्तु में सजीवता लाने के लिए देश, काल और वातावरण की स्वाभाविकता आवश्यक है। इस तत्त्व की अवतारणा तीन प्रकार से की जा सकती है -

1) पात्रों की वेशभूषा द्‌वारा

2) पात्रों की भाषा के द्‌वारा

3) तत्कालीन अवस्था के चित्रण द्‌वारा।

जिस स्थान में और जिस काल में लोग जैसे वस्त्राभूषण धारण करते रहे हो, उसके पात्र भी वैसे ही वेषभूषा धारण करे इसकी ओर नाटककार को ध्यान देना चाहिए। उसी प्रकार जिस स्थान और काल में जो भाषा प्रचलित रही हो, उससे सम्बद्‌ध पात्रों को वैसी ही भाषा बोलना चाहिए। अगर रामायण कालीन पात्र 'अंग्रेजी' बोलने लगे तो नाटककार हास्य का पात्र बन जायेगा। रंगमंच एवं घटनाचक्र की रचना भी वातावरण के अनुकूल होनी चाहिए। पाश्चात्य नाटकों में 'संकलन त्रय' को इसी उद्देश्य से विशेष महत्त्व दिया गया है।

संकलन त्रय के कारण नाटक में स्वाभाविकता आती है। संकलन त्रय के अन्तर्गत स्थान की एकता, काल की एकता और कार्य की एकता आती है।

1) स्थान की एकता : जो घटना जिस स्थल की हो या जिन व्यक्तियों से सम्बद्‌ध है, वही वहाँ उपस्थित रहें। किसी एक दृश्य में दिखाये गये पात्र तुरन्त ही दूसरे दृश्य में न दिखाए जाए क्योंकि कुछ ही क्षणों में लम्बे स्थान की दूरी तय कर लेना अस्वाभाविक है।

2) काल की एकता : नाटक में चित्रित घटनाओं के कालक्रम का ध्यान रखना चाहिए। जो घटना पूर्व घटी हो, उसका चित्रण पूर्व और जो पश्चात घटी हो, उसका पश्चात चित्रण होना चाहिए। नाटक में प्रदर्शित दो घटनाओं की समय दूरी इतनी न हो कि दो घटनाएँ दो अलग काल की लगे।

3) कार्य की एकता : इसका तात्पर्य यह है कि कथावस्तु का कोई एक मुख्य सिद्‌धांत हो, प्रासंगिक कथाए उसमें बाधक न बन जाए। प्रधान कथा और प्रासंगिक कथाओं के समुचित संगठन तथा स्वाभाविक अभिनय का ध्यान रखना आवश्यक है। वस्तुत: मुख्यकथा की ही प्रधानता रहनी चाहिए, गौण कथाएँ उसकी सहायक बनकर रह सकती हैं। इस प्रकार 'संकलन त्रय का यथार्थ ढंग से पालन करने से ही नाटक में एकरसता और प्रभावात्मकता बनी रहती है।

5) उद्देश्य :

पाश्चात्य नाट्‌यशास्त्री 'उद्देश्य' को नाटक का मुख्य तत्त्व मानते हैं। जीवन का यथार्थ चित्रण नाटकों में करना ही उनका उद्देश्य होता है। अत: वे नाटक में सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक समस्या का उद्‌घाटन करते हैं। पाश्चात्य प्रभाव से हिन्दी के नाटकों में भी भौतिक उद्देश्य की अभिव्यक्ति देखी जाती है। पात्रों के संवादो द्‌वारा नाटककार इन भौतिक उद्देश्यों की अभिव्यक्ति करता है। उसका उद्देश्य जितना महान होगा, उसकी कृति भी उतनी महत्त्वशील होगी। नाटककार पात्रों द्‌वारा आन्तरिक एवं बाह्य संघर्षों को अभिव्यक्त करता है जिसका सम्बध उद्देश्य से होता है। नाटककार अपने विभिन्न विचारों का प्रतिपादन विभिन्न पात्रों को माध्यम बनाकर करता है। विचार के संबंध में विश्लेषण करते हुए अरस्तू ने प्रमाण और प्रतिपाद के साथ करूणा, त्रास और क्रोध की उद्‌बुद्धि, अतिमूल्य एवं अवमूल्यन को भी विचार का उपविभाग माना है। इसका अर्थ, भाव तत्त्व का अन्तर्भाव विचारतत्त्व में कर दिया गया है। नाटककार अपने विचारों का प्रतिपादन करने के लिए नाटक के समस्त अंगों, कथानक, चरित्र-चित्रण

आदि की योजना करता है। जिसके माध्यम से नाटककार का उद्देश्य समझा जाता है। भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक का उद्देश्य रस-परिपाक माना गया है।

नाटककार यथार्थ और आदर्श का समन्वय करके उद्देश्य की दृष्टि से किसी आदर्श या नैतिकता की स्थापना करता है। जीवन की समस्याएँ तथा उनका उचित समाधान भी नाटककार प्रस्तुत करता है। नाटककार अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति कर सामाजिकों के मन को आकृष्ट कर लेता है और समाज का यथार्थरूप प्रस्तुत कर मानव-समाज की सहानुभूति भी अर्जित करता है।

6) भाषाशैली :

नाटकों में 'संवाद' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं और इनको सरस एवं प्रभावशील बनाने के लिए 'भाषाशैली' का आश्रय लेना अनिवार्य है। नाटक की भाषा सरल, सरस, रोचक, प्रभावपूर्ण एवं पात्रानुकूल होनी चाहिए। नाटक की भाषा अलंकृत होनी चाहिए। अलंकृत भाषा का मतलब जिसमें लय, सामंजस्य और गीत का समावेश होता है। नाटक के भव्य वातावरण को उपयुक्त रूप से चित्रित करने के लिए शब्दों के छन्दोबद्ध विन्यास अर्थात पद्य की आवश्यकता होती है। अरस्तू का मानना है कि नाटक की भाषा प्रसन्न होनी चाहिए क्षुद्र नहीं। वह समृद्ध हो, उदात्त हो; किन्तु बाह्याडम्बर से मुक्त हो। नाटक की भाषा में अलंकृत गरिमा और औचित्य का ऐसा समन्वय होना चाहिए जो उसे उद्देश्योन्मुख बनाए रखे। भाषा के साथ ही शैली का संबंध है क्योंकि शैली भी भाषा को लेकर चलती है। नाटक का कथानक और उद्देश्य जितना भव्य और उदात्त होता है उसकी भाषा भी उन्हीं के अनुरूप भव्य और उदात्त हो।

गीत और नृत्य की सहायता से नाटक की शैली विशेष प्रभावपूर्ण हो जाती है।

शैली के अंग - 1) गुण 2) रीति 3) वृत्ति

1) गुण : गुण तो 'ओज', 'प्रसाद' और 'माधुर्य' हैं, जो शौर्यादि की भाँति 'रस' के गुण माने जाते हैं।

2) रीति : गौडी, वैदर्भी और पांचाली ये तीन रीतियाँ मानी जाती हैं।

3) वृत्ति : वृत्ति की चार विधाएँ हैं - 1) कौशिकी 2) सात्वती 3) आरभटी 4) भारती।

7) अभिनेयता :

'अभिनय' के कारण ही नाटक को 'दृश्यकाव्य' की संज्ञा प्राप्त है। अभिनेय नाटक ही विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। नाटक का निर्माण रंगमंच पर अभिनित होने के लिए ही होता है। अत: 'अभिनेयता' को पाश्चात्य विद्वानों ने नाट्य तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने रंगमंच की सुविधा को ध्यान में रखकर कथानक का विभाजन तीन अंकों और दृश्यों में स्वीकार किया है। प्रत्येक अंक का अंत कौतुहल बढाने का कार्य करता है। पात्रों से संबंधित संघर्ष भी अभिनय के लिए उपयुक्त होना है। कथोपकथन और उसकी भाषा का रंगमंच के लिए सहज और स्वाभाविक होना भी अभिनय के लिए उपयुक्त होता है। नाटक में अभिनय के अंतर्गत कुछ रंग-निर्देश भी होते हैं। पाश्चात्य विद्वान अरस्तू ने

नाटक के सफल अभिनय के लिए 'संकलन त्रय' का उल्लेख किया है। इस संकलन त्रय के पालन से ही नाटक अभिनयात्मक बन सकता है तथा उसमें एकरसता और प्रभावात्मकता बनी रहती है।

2.3.2 उपन्यास : स्वरूप, तत्त्व और प्रकार -

उपन्यास का स्वरूप :

उपन्यास 'उप' और 'न्यास' से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ समीप और 'न्यास' का अर्थ है रचना। अर्थात उपन्यास वह है जिसमें उपन्यासकार मानव जीवन की यथार्थ घटनाओं को लेकर कल्पना का जामा पहनाकर एक नवीन रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार इसमें मानव जीवन से संबंधित सुखद एवं दुखद किन्तु मर्मस्पर्शी घटनाओं को निश्चित तारतम्य के साथ चित्रित करता है।

वस्तुत: उपन्यास जनसाधारण के लिए लिखा जाता है। उसकी भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए। उपन्यास में जो कथावस्तु हो, वह काल्पनिक होते हुए भी जीवन के यथार्थ से ली गई हो। उसमें अवान्तरकथाओं के मेल रहने पर भी उसकी मूलकथा का स्वरूप स्पष्ट हो। उपन्यास को हम गद्यात्मक महाकाव्य भी कह सकते हैं। लेखक उपन्यास में जिन विचारों को व्यक्त करता है, उसकी दो विधियाँ अपनाता है - प्रत्यक्ष विधि, अप्रत्यक्ष विधी। प्रत्यक्ष विधी में लेखक अवकाश निकालकर स्वयं किसी सिद्धांत का प्रतिपादन करने लगता है और अप्रत्यक्ष विधि में वह पात्रों के माध्यम से बोलता है। प्राय: सफल लेखक अपने प्रधान पात्रों के माध्यम से ही बोलते हैं। कला की दृष्टि से यही विधि उत्तम है, क्योंकि उपन्यासकार को साक्षात उपदेष्टा बनने से बचना चाहिए। जीवन की विविधा का चित्रण करने में उपन्यासकार को जितनी ही प्रखर अनुभूति होगी, उतनी ही सफलता मिलेगी।

उपन्यास के तत्त्व :

आज के हिन्दी उपन्यास की रूप-रचना पाश्चात्य उपन्यास शिल्प से प्रभावित है। अत: उपन्यास के तत्त्वों का विवेचन पाश्चात्य उपन्यास शास्त्र के अनुसार होना चाहिए। पाश्चात्य कथा शास्त्र में उपन्यास के छ: तत्त्व माने गए हैं-

1) कथावस्तु	2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण	3) कथोपकथन
4) देशकाल-वातावरण	5) भाषाशैली	6) उद्देश्य

1) कथावस्तु :

'उपन्यास' में कथावस्तु का सर्वाधिक महत्त्व होता है। जो तत्त्व रीढ की हड्डी के समान सारी घटनाओं को गतिशील बनाता है, उसे कथानक कहते हैं। उपन्यास की कथावस्तु में कार्य-कारण सम्बन्ध प्रमुख होता है और आगे की घटनाओं का कोई न कोई उचित कारण दे दिया जाता है। उपन्यास का विषय एक सामान्य घटना से लेकर राज्यक्रान्ति तक हो सकता है तथा एक पशु से लेकर कोई महामानव तक उसका नायक हो सकताहै, किन्तु बिना मौलिकता के उपन्यास की सफलता और महानता स्वीकार नहीं की जा सकती।

उपन्यास की कथावस्तु इतनी छोटी न हो कि उसमें सौंन्दर्य उत्पन्न ही न होने पाए और न इतनी अधिक बडी हो कि आगे पढते चले जाए और पीछे का भूलते जाए। कथावस्तु का पूर्ण निर्वाह प्रारम्भ से अन्त तक होना चाहिए।

सभी उलझने अन्त तक पहुँचते -पहुँचते सुलझ जानी चाहिए। कथावस्तु ऐतिहासिक हो या काल्पनिक किन्तु लेखक को न्यूनाधिकरूप में अपनी कल्पना का आश्रय लेकर उसे सरसता एवं प्रभावकारिता प्रदान करनी होती है। कथावस्तु जीवन से सम्बद्ध किसी भी प्रकार की हो सकती है। चाहे वह राजनीतिक हो या धार्मिक, साहित्यिक हो या सांस्कृतिक, ऐतिहासिक हो या पौराणिक, रोमाण्टिक हो या जासूसी।

उत्तम कथावस्तु में संघटन, अनुपात, घटनाओं का सहज विकास, रोचकता, गति, स्वाभाविकता, मौलिकता तथा सत्यता के गुण विद्यमान रहते हैं। उपन्यास की कथावस्तु में मानवजीवन की परिस्थितियों एवं उनकी समस्याओं का ऐसा सजीव चित्रण होना चाहिए, जो बिल्कुल सत्य हो और यथार्थ होते हुए भी रोचक हो। समाज के आदर्श चरित्रों के माध्यम से उपन्यास में प्रकट होते हैं। जीवन के उत्थानपतन का मनोवैज्ञानिक चित्र उपन्यास की कथावस्तु में होता है। उपन्यास में चित्रित घटनाएँ सीमित रूप में प्रस्तुत की जानी चाहिए। सभी घटनाओं में एक श्रृंखला होनी चाहिए, जिससे वे समन्वित रूप में एक प्रतीत होती हो।

सामान्यत: उपन्यास की कथावस्तु 'प्रत्यक्ष प्रणाली या आत्मकथा प्रणाली' अथवा 'पत्र प्रणाली के माध्यम से' प्रस्तुत किया जाता है।

2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण :

उपन्यास में चित्रित घटनाएँ जिनसे सम्बन्धित होती हैं या जिनको लेकर उन घटनाओं का घटित होना दिखाया जाता है - वे पात्र कहलाते हैं। पात्रों के बिना कथानक नहीं चल सकता। उपन्यास का विषय मनुष्य जीवन सम्बधी होने के कारण पात्रों का चयन समाज के सभी वर्गों से किया जा सकता है। विभिन्न प्रकृति और प्रवृत्ति के पात्र उपन्यास में होते हैं। समाज में कोई भी दो प्राणी एक जैसे नहीं होते, हर एक में कुछ न कुछ भिन्नता होती है। चरित्र चित्रण में इस भिन्नता को स्पष्ट करना उपन्यासकार का कर्तव्य माना जाता है। इस संदर्भ में 'प्रेमचन्द' कहते हैं, ''किन्ही भी दो आदमियों की सूरतें नहीं मिलती, उसी भाँति आदमियों के चरित्र भी नहीं मिलते। जैसे सब अदमियों के हाथ, पाँव, आँखे, कान, नाक, मुँह होते हैं - पर इतनी समानता पर भी जिस तरह उनमें विभिन्नता मौजूद रहती है, उसी भाँति सब आदमियों के चरित्रों में भी बहुत कुछ समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएँ होती हैं। यही समानता और विभिन्नता दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्तव्य होता है।

चरित्र चित्रण की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं, किन्तु मुख्य रूप में वर्णनात्मक प्रणाली और अभिनयात्मक प्रणाली, ये दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। सामान्यत: चरित्र चार प्रकार के होते हैं। 1) वर्गप्रधान चरित्र 2) व्यक्तिप्रधान चरित्र 3) आदर्श चरित्र 4) यथार्थ चरित्र।

वर्ग प्रधान चरित्रों में जातीय विशेषताओं का चित्रण होता है। व्यक्तिप्रधान चरित्रों में स्वतंत्र रूप से व्यक्तिगत विशेषताएँ अंकित की जाती हैं। आदर्श चरित्र में किसी पात्र विशेष के जीवन में आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की जाती है और यथार्थवादी चरित्रों में पात्र विशेष के माध्यम से जीवन की यथार्थता का अंकन किया जाता है। इसमें पात्र देव, असुर अथवा मानव किसी भी कोटि के हो सकते हैं।

चरित्र-चित्रण के लिए मौलिकता, स्वाभाविकता, अनुकूलता, सजीवता, सहृदयता आदि गुणों का होना आवश्यक है।

1. मौलिकता : जो उपन्यासकार जितना मौलिक होता है, उसके पात्र उतने ही मौलिक और हमारे मन को स्वाभाविक लगने वाले होते हैं। उपन्यास के पात्र जहाँ एक ओर अपने समाज से जुडे रहे और अन्य प्राणियों जैसी विशेषताओं से युक्त हो; किन्तु उनमें दूसरों की अपेक्षा रहनेवाला भेद भी स्पष्ट हो सके।

2. स्वाभाविकता : स्वाभाविकता का अभिप्राय यह है कि पात्रों का चित्रण इस प्रकार होना चाहिए कि वे हमें इसी जगत् के अपने आसपास के प्राणी प्रतीत हो सके।

3. अनुकूलता : पात्रों का कथानक के अनुकूल होना उपन्यास की श्रेष्ठता के लिए आवश्यक गुण माना गया है। पात्रों का सृजन कथा और परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए।

4. सजीवता : अनुकूलता और स्वाभाविकता आदि गुण जब चरित्र-चित्रण में उपस्थित रहते हैं, तभी उसमें सजीवता आ पाती है। उपन्यास के पात्र निर्जीव और निष्प्रभ प्रतीत होने की अपेक्षा सजीव प्रतीत होने चाहिए।

5. सहृदयता : उपन्यास के पात्र अधिक से अधिक मानवीय और हमारे सुख-दु:ख आदि के साथ जुडे रहने चाहिए। हमारी सहानुभूति और संवेदना के वे अधिकारी हों तथा वे हमें अपने विश्वास में ले सकें, ऐसा होना आवश्यक है।

3) कथोपकथन :

कथोपकथन को उपन्यास का आवश्यक तत्त्व माना गया है। उपन्यासकार को यह ध्यान रखना पडता है कि कथोपकथन संगत, सजीव एवं स्वाभाविक हों। अधिक लम्बे कथोपकथन नीरस लगने लगते हैं। उपन्यास की स्वाभाविकता कथोपकथन पर निर्भर करती है। कथोपकथन से उपन्यास में नाटकीयता आ जाती है, अत: यथासंभव उनमें पात्रों के मनोभावों, संकल्प - विकल्पों, प्रतिक्रियाओं आदि का भव्य चित्र प्रस्तुत करना चाहिएं नाटक की तुलना में उपन्यास के कथोपकथन विस्तृत होते हैं। उपन्यास में चित्रित पात्र के अनुकूल स्वाभाविकता, मनोविज्ञान की उपयुक्तता और उपन्यास की रोचकता और आकर्षण को बनाने वाली अभिनयात्मकता और सरसता आवश्यक है।

कथोपकथन के द्वारा तीन विशेषताएँ आती हैं। -

1) कथानक का विकास

2) चरित्र-चित्रण में सहाय्य

3) लेखक के दृष्टिकोण की झाँकी।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए कथोपकथनों को सूक्ष्म, स्वाभाविक, सशक्त और प्रभावशील होना चाहिए।

4) देशकाल-वातावरण :

देशकाल के अन्तर्गत किसी भी समाज या राष्ट्र की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि आते हैं। उपन्यास में चित्रित घटना की सजीवता में वृद्धि करने के लिए 'वातावरण चित्रण' उपयुक्त सिद्ध होता है। देशकाल तथा वातावरण के चित्रण में भी सूक्ष्मता का ध्यान रखना चाहिए। इसको सरस बनाने के लिए इसमें कल्पना का भी पुट दे देना चाहिए।

पात्रों के व्यक्तित्त्व का चित्र उनकी बातचीत से हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है; किन्तु ये पात्र जिस परिस्थिति और वातावरण में रहते और विकास पाते है, उस परिस्थिति, स्थान और काल का पूरा-पूरा चित्र दिया जाय, जिसमें की कथानक की घटनाएँ घटित होती हुई दिखाई गई हो। वातावरण उपन्यास का प्रधान अंग है। कथानक के पात्र भी वास्तविक पात्र की भाँति देश-काल के बन्धन में रहते हैं। जिस प्रकार बिना अंगूठी के नगीना शोभा नहीं देता उसी प्रकार बिना देशकाल के पात्रों का व्यक्तित्त्व भी स्पष्ट नहीं होता है और घटनाक्रम को समझने के लिए भी इसकी आवश्यकता होती है।

5) भाषाशैली :

डॉ. श्यामसुन्दरदास शैली की परिभाषा बताते हुए कहते हैं, ''भाव, विचार और कल्पना तो इसमें नैसर्गिक अवस्था में वर्तमान रहती है और साथ ही उन्हें व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी इसमें रहती है। अब यदि उस शक्ति को बढाकर संस्कृत और उन्नत करके हम उसका उपयोग कर सके तो उन भावों, विचारों और कल्पनाओं के द्वारा हम संसार के ज्ञानभण्डार की वृद्धि करके उसका बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं। इसी शक्ति को साहित्य में शैली कहते हैं।'' उनके अनुसार शैली का मूल आधार भाषा और भाषा का आधार शब्द है।

लेखक की अभिव्यक्ति का साधन शैली है और भाषा उसकी सहायिका है। उपन्यास की भाषा जन-जीवन के जितने ही समीप होगी, वह उतना ही सरल लगेगा और पाठक आकृष्ट होंगे। लोकोक्तियों एव मुहावरों के स्वाभाविक प्रयोग से उसमें सजीवता आती है। भाषाशैली को अधिक ग्राह्य बनाने के लिए उपन्यासकार को हास्य और व्यंग्य का यथोचित प्राविधान करना चाहिए। पात्रानुकूल भाषाशैली से उपन्यास में प्रवाह एवं प्रांजलता जैसे गुण स्वत: आ जाते हैं। शैली जहाँ एक ओर लेखक के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है, वहाँ दूसरी ओर पाठक को भी विमुग्ध रखती है।

उपन्यास लेखक में प्राय: निम्नलिखित शैलियाँ प्रचलति हैं -

1) वर्णनात्मक शैली, 2) आत्मकथानात्मक शैली, 3) पात्रात्मक शैली, 4) डायरी शैली।

1. वर्णनात्मक शैली : वर्णनात्मक शैली में लेखक पात्रों एवं घटनाओं का वर्णन करता चलता है। यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। वस्तु वर्णन एवं प्रकृति वर्णन की सुविधा इस शैली में सर्वाधिक रहती है।

2. आत्मकथानात्मक शैली : आत्मकथात्मक शैली में एक पात्र ही स्वत: सारी कहानी आप बीती के रूप में प्रस्तुत करता है।

3. पात्रात्मक शैली : पत्रात्मक शैली में पत्रों के माध्यम से कथावस्तु विकसित की जाती है।

4. डायरी शैली : डायरी शैली में 'डायरी' के माध्यम से कथावस्तु का विकास किया जाता है।

6) उद्देश्य :

उपन्यासकार को जीवन की मीमांसा करते हुए कलात्मकता के सौन्दर्य की रक्षा भी करनी चाहिए। वस्तुत: सौन्दर्य को सहगामी बनाकर जीवन दर्शन और आनन्द का समन्वयात्मक चित्रण करना उपन्यासकार का लक्ष्य होना

चाहिए। मुन्शी प्रेमचन्द ने मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का लक्ष्य माना है, जो संगत होता हुआ भी कुछ संशोधन की माँग करता है।

स्वयं भारमुक्त होना और दूसरों को आनन्द देकर युग से परिचित करना साहित्य का उद्देश्य माना जाता है। उपन्यास चाहे सुखान्त हो या दुखान्त, दोनों से आनन्द की अनुभूति होती है और इसी अनुभूति की सिद्धी कर सकने पर लेखक का यत्न सफल हो जाता है। शाश्वत जीवन मूल्यों और प्रश्नों की व्याख्या करने वाले कलाकार की ही कृति अमर होती है। इस प्रकार इन्ही की साधना करना उपन्यासकार का लक्ष्य होता है।

उपन्यास के प्रकार :

उपन्यास को जीवन का दर्पण कहा जा सकता है। उपन्यास में मानव जीवन की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों को यथार्थ और कल्पना के मिश्रण से कलापूर्ण कथात्मक रूप देकर अभिव्यक्त किया जाता है। उपन्यास में जीवन की अनेकरूपता होने से उपन्यास के कई प्रकार होते हैं। प्रमुखत: उपन्यास के निम्नलिखित प्रकार विद्वानों ने स्वीकार किए हैं। कथावस्तु तथा विषय के अनुसार उपन्यास के प्रकार निम्न हैं -

1) सामाजिक उपन्यास :

सामाजिक समस्याओं का चित्रण इस प्रकार के उपन्यासों में होता है। समाज में व्याप्त अंध-विश्वास, रूढि-परम्पराएँ, रीति-रिवाज, तथा स्त्री-पुरुष के संबंध आदि बातें विशेष रूप से सामाजिक उपन्यास में चित्रित की जाती हैं। इस प्रकार के उपन्यासों में समाज जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

मुन्शी प्रेमचन्द इस बारे में लिखते हैं - ''मैं उपन्यास को मानवचरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानवचरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना उपन्यास का मूलतत्त्व है। प्रेमचन्द के प्रेमाश्रय, वरदान, सेवासदन, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान, गबन आदि उपन्यास इसी कोटि में आते हैं।

2) ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक घटना और ऐतिहासिक महापुरूषों का जीवन इस प्रकार के उपन्यास की कथावस्तु का आधार होता है। देश-काल चित्रण इस उपन्यास की सबसे बडी विशेषता होती है। उपन्यास में जिस स्थान और काल का वर्णन होता है, वह उचित, यथार्थ और इतिहासपूरक होना चाहिएं ऐतिहासिक उपन्यासकार को उपन्यास में वर्णित ऐतिहासिक स्थल, काल, उस प्रांत की संस्कृति, रहन-सहन रीति-रिवाज आदि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार ऐतिहासिक घटना को अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर चित्रित करता है। लेकिन कल्पना की अधिकता भी नहीं होनी चाहिए।

हिंदी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासकारों में मिश्रबंधु, प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा', भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

3) राजनीतिक उपन्यास :

इस प्रकार की उपन्यासों में प्रचलित राजनीतिक घटनाओं का वर्णन किया जाता है। राजनीतिक हलचलों, आंदोलनों, क्रांतिकारी दलों एवं भ्रष्टाचार का वर्णन इसमें होता है। ठाकुर शिवसिंहनाथ ने शुद्ध राजनीतिक आंदोलनों को लेकर उपन्यास लिखे। राजनीतिक विषमताओं का चित्र भगवतीचरण वर्मा ने 'टेढे-मेढे रास्ते' में प्रस्तुत किया है। यशदत्त शर्मा का 'इन्सान', सेठ गोविंददास का 'इंदु', गुरुदत्त का 'विकृत छाया' आदि उपन्यास सफल राजनीतिक उपन्यास माने जाते हैं।

4) मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

व्यक्ति की कुंठाओं का मनोविज्ञान के आधार पर विश्लेषण इन उपन्यासों में किया जाता है। इस संदर्भ में फ्राइड का कहना है - मानव को जन्म से लेकर मृत्यु तक काम ही प्रेरित करता है। हिंदी साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों पर फ्राइड के इस वासनावाद का काफी प्रभाव दिखाई पडता है। हिंदी साहित्य का पहला सफल मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्र का 'सुनीता' ही माना जाता है। लेकिन मनोविज्ञान के नामपर आजकल बहुत अश्लिल साहित्य का निर्माण हिंदी में हो रहा है।

मार्क्सवादी मनोविज्ञान एक प्रकार से रोटी का मनोविज्ञान है। राजनीतिक उपन्यासों पर इसी मनोविज्ञान का प्रभाव रहता है। यशपाल का 'देशद्रोही', नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास राजनीतिक न होकर शुद्ध मनोविज्ञानवादी धारा के अंतर्गत आते हैं।

5) आँचलिक उपन्यास :

आँचलिक उपन्यासों की विशेषता यह है कि, जिस किसी भी स्थल, जाति या आँचल को उपन्यास में चित्रित किया जाता है, उसकी भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति, रिती-रिवाज तथा प्रकृति का यथार्थ चित्रण उसमें किया जाता है।

विशिष्ट प्रदेश के समाज जीवन की संस्कृति, वहाँ के लोगों की वेशभूषा, जीवन-यापन, आर्थिक अवस्था आदि का चित्रण आँचलिक उपन्यासों में होता है। उनकी सामाजिक समस्या, जातिगत या वर्णगत भेद, उनका रहन-सहन, खान-पान, राजनीतिक जागृति, शिक्षा-दीक्षा का ढंग आदि की अभिव्यक्ति करना ही इस कोटि के उपन्यासों का उद्देश्य होता है।

नागार्जुन का 'बलचनामा', फणीश्वरनाथ का 'मैला आँचल', उदय शंकर भट्ट का 'लोक-परलोक', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर वही चली' आदि प्रसिद्ध आँचलिक उपन्यास है।

6) हास्य-व्यंग्यत्मक उपन्यास :

इस प्रकार के उपन्यास मनोरंजक एवं समाज की बुरी प्रथा पर प्रहार करनेवाले होते हैं। व्यंग्य के माध्यम से समाज की कु-प्रथा की बीमारी को ठीक किया जाता है हिंदी के प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य लेखक जे. पी. श्रीवास्तव के शब्दों में ''यह वह अधिकार है जो बडों-बडों के मिजाज चुटकियों में ठीक कर देता है। यह वह कोडा होता है, जो मनुष्य को सीधी राह से भटकने नहीं देता।''

भारतेन्दुकालीन पंडित बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित 'सौ अजान एक सुजान' एक हास्यरस का उपन्यास है। निरालाजी ने 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसूर बकरिह' नामक दो हास्यरसप्रधान उपन्यास लिखे हैं। अमृतलाल नागर का 'सेठ बाँकेमल', केशवचंद्र शर्मा का 'काठ का उल्लू', सरयू पंडा का 'मिस्टर टेलिफून का टेलिफून', 'द्वारिका प्रसाद का 'गुनाह बेलज्जत' आदि प्रसिद्ध हास्यरसप्रधान उपन्यास हैं।

7) घटनाप्रधान उपन्यास :

इस प्रकार के उपन्यासों में चमत्कारिक घटनाओं की प्रधानता रहती है। इसमें कथावस्तु मुख्य होती है। घटनाचक्र के जाल में ही पाठक उलझा रहता है। घटित हुई घटना को उपन्यासकार कल्पना शक्ति के आधारपर चित्रित करता है। इसमें पात्रों का स्थान गौण रहता है। कथावस्तु की ओर ही पाठक इतने आकर्षित होते हैं की पात्रों को पूर्णतया भूला देते हैं। पात्रों के चारित्रिक विकास का कोई महत्त्व इसमें नहीं रहता।

हिंदी के प्रारंभिक युग में जासूसी ऐयारी और तिलस्मी उपन्यास लिखे गए। चंद्रकांता, भूतनाथ आदि उपन्यास इसी श्रेणी में आते हैं। घटनाप्रधान उपन्यास लिखने वालों में देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी का प्रमुख स्थान है।

8) चरित्र-प्रधान उपन्यास :

इस प्रकार के उपन्यास में घटनाएँ गौण रहती हैं और पात्रों की प्रधानता रहती है। इसमें चित्रित पात्र घटनाओं से पूर्ण स्वतंत्र रहते हैं। वे स्वयं परिस्थितियों के निर्माता होते हैं। पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर घटनाएँ प्रकाश डालती हैं।

समाज, देश तथा जाति की चारित्रिक विशेषताओं का प्रदर्शन सर्वाधिक प्रभावशाली और संवेदनशील रूप में ऐसे उपन्यासों में किया जाता है। हिंदी में जैनेंद्र, उग्र तथा चतुरसेन शास्त्री के कुछ उपन्यास इसी वर्ग के हैं।

उपन्यासों के उपर्युक्त मुख्य प्रकारों के अतिरिक्त जीवनीपरक उपन्यास, व्यक्तिवादी उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, कथात्मक उपन्यास, आत्मकथात्मक उपन्यास, नाटकीय उपन्यास आदि कई भेद हो सकते हैं।

2.3.3 डायरी-स्वरूप, तत्त्व और प्रकार :

डायरी का स्वरूप :

डायरी यों तो किसी व्यक्ति की वैयक्तिक सम्पत्ति होती है। किन्तु प्रकाश में आने के बाद अपनी सार्वजनीन एवं सार्वकालिक भावनाओं के कारण साहित्य जगत की सम्पत्ति बन जाती है। यदि डायरी लेखक कोई ख्यातिलब्ध अथवा महान व्यक्ति हुआ तब उसकी डायरी और अधिक लोकप्रियता अर्जित कर लेती है। उदाहरण के लिए महात्मा गांधी तथा टालस्टाय जैसी महान विभूतियों की डायरी ली जा सकती है।

'डायरी अंग्रेजी का शब्द है और लैटिन भाषा के 'डायस' से बना है। डायस शब्द संस्कृत के दिवस शब्द का समानार्थक है। डायरी के पर्यायवाची शब्द दैनिकी, रोजनामचा दैनंदिनी आदि हैं। इसमें तिथिवार दैनिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ अंकित की जाती हैं। यों तो हर्ष विषाद, उल्लास, नैराश्य, वैराग्य आदि भावनाओं को उत्पन्न करने वाली घटनाएँ सभी व्यक्तियों के जीवन में रोज ही घटा करती हैं, परंतु सामान्य व्यक्ति उन्हें भूल जाता है जबकि

साहित्यकार के संवेदनशील हृदय से उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने की आतुरता जाग उठती है। इन्हीं क्षणों में डायरी लिखी जाती है। किसी दैनिक घटना के संदर्भ में अपने मन की उधेडबुन व्यक्त करने के लिए डायरी सर्वोत्तम माध्यम है। यह प्रामाणिक भी बहुत अधिक है क्योंकि विशुद्ध डायरी उस उद्देश्य से कभी नहीं लिखी जाती कि बाद में इसका प्रकाशन होगा। यह तो हृदय की भावनाओं का निश्छल प्रकाशन होती है।

डायरी एक तरल विधा है जिस बर्तन में डालो उसी का आकार वों ले लेगी। उपन्यास में डालिए तो उपन्यास का आकार ले लेगी। डायरी का उपयोग यात्रा-आख्यान में लिखने में किया गया है। आप कल्पना करें कि वास्को डि गामा जर्नल नहीं लिखता तो क्या होता। यदि चार्ल्स डारविन ने जर्नल्स नहीं लिखे होते तो क्या होता। जर्नल में व्यक्तिगत बाते प्राय: नहीं लिखी जाती। डायरी में लोग दूसरों के बारे में भी लिखते हैं तब वह डायरी कम जर्नल का रूप अधिक ले लेती है।

डायरी निजी जीवन से संबंधित होते हुए भी देश, काल और वातावरण से प्रभावित होती है। आत्मीय लेखन में लेखक अपने साथ दैनिक घटनाओं तथा सम्पर्क में आए व्यक्तियों का उल्लेख भी करता है और उनके प्रति अपनी निजी प्रतिक्रियाएँ भी देता है। व्यक्ति अपने निजी व्यक्तिगत गोपनीय विचार सत्यता से स्पष्टता के साथ सहज रूप में लिखता है, अतएव यह विधा आत्मकथा के समीप पहुँच जाती है अथवा यों कहे कि आत्मकथा लेखन में निजी डायरी सहायक सिद्ध होती है।

डायरी के तत्त्व :

डायरी शैली आत्मकथा परक, भावप्रवण गद्य विधा है। डायरी का शाब्दिक अर्थ प्रतिदिन की घटनाओं का प्रभावी ढंग से लेखन है। डायरी या दैनन्दिनी लेखन में, उस प्रकार की प्रवृत्ति वाले लेखक, अपने दैनिक अनुभवों का, भेंटवार्ताओं का स्थानिक निरीक्षणों का विवरण देते हैं। डायरी के तत्त्व, निम्न प्रकार हैं -

1) वर्ण्य विषय, 2) डायरी लेखक की प्रतिक्रियाएँ, 3) परिवेश चित्रण, 4) उद्देश्य, 5) भाषाशैली।

1) वर्ण्य विषय : किसी डायरी की विषयवस्तु घटना, व्यक्ति, वातावरण, दृश्य, भाव, विचार, समस्या आदि पर आधारित होती है। घटनाएँ डायरी का आधार होती हैं। घटनाएँ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैयक्तिक, समस्या मूलक आदि अनेक प्रकार की होती हैं, जिनका संबंध डायरी लेखक से होता है।

डायरी लेखक डायरी लिखते समय जिन प्रसंगों का चुनाव करता हैं, उससे ही उसकी रोचकता सिद्ध हो जाती है। विषय का यह चुनाव कृत्रिम पद्धति से अथवा जानबुझकर न हों, वह अनायास हो। इस विषय वर्णन की अपनी कुछ शर्ते हैं -

1. वर्णन में रोचकता - पाठक का मन उसकी ओर आकृष्ट हो इसलिए उसमें रोचकता होनी चाहिए। यह रोचकता दो कारणों से आ सकती है - कौतुहल और नवीनता। अर्थात् घटनाओं के वर्णन में संक्षिप्तता का होना भी जरूरी है।

2. घटनाओं में क्रमबद्धता - डायरी लेखन में सुसंगठितता और तर्कशुद्धता होनी चाहिए।

3. स्पष्टता - यह एक डायरी लेखन का आवश्यक गुण है। यथार्थ घटनाओं का सरल-सहज भाषा में वर्णन होना चाहिए।

2) डायरी लेखक की प्रतिक्रियाएँ : डायरी लेखन में लेखक स्वयं एक पात्र होता है। उससे संबंधित पात्रों को आधार बनाकर उनकी विशेषताओं को सामान्य और असामान्य स्थितियों में उभारा जाता है। डायरी में लेखक के जीवन में जिन लोगों का संबंध आता है, उनका सहभाग होता है। डायरी वैयक्तिक सम्पत्ति होने के कारण डायरी का चरित्र-चित्रण मुख्यत: तीन प्रकार से किया जाता है।-

1) लेखक से संबंधित पात्रों के कार्यों द्वारा।
2) लेखक से संबंधित पात्रों के वार्तापाल द्वारा।
3) लेखक की व्याख्या द्वारा।

डायरी का आकार सीमित होता है। अत: उसमें पात्रों के वार्तालाप के लिए अधिक अवकाश नहीं होता।

समस्त साहित्य भावनात्मकता पर आधारित है। मानव हृदय की भावनाओं का मुखर रूप ही डायरी में होता है। जो परिवर्तन विभिन्न समाजों तथा भौगोलिक स्थितियों के अन्तर वाले समुदायों में दृष्टिगोचर होता है, वह भावों की अभिव्यक्ति के कारण है। प्रेम प्रकट करने की पद्धति विभिन्न समाजों और समुदायों में भिन्न - भिन्न होती है; किन्तु प्रेम-भाव सब में समान होता है। डायरी में हास्य, करूणा, प्रेम, वीरता, घृणा आदि भावों का होना जरूरी होता है।

3) परिवेश चित्रण : कलात्मक चित्रण में प्रारम्भिक काल से ही दो प्रकार की पद्धतियाँ अपनाई गई हैं - काल्पनिक और यथार्थवादी। मानव मन की प्रत्येक कल्पना यथार्थ पर ही आधारित होती है। व्यक्ति की इन्द्रियों, मन और बुद्धि आदि भौतिक अभिज्ञान द्वारा जो सच्चा अनुभव उपलब्ध होता है उसे बिना घटाए बढाए उसके सच्चे रूप को डायरी में चित्रित करना, उसेही यथार्थवादी चित्रण कहते हैं। डायरी प्रकाश में आने के बाद सार्वजनिक बन जाती है। डायरी साहित्य की एक विधा होने के कारण यथार्थवादी होने पर ही सफलता की सीढियाँ चढ पाती है।

डायरी में त्वरा नहीं होगी तो वह शिथिलता तथा अनावश्यक विस्तार से मुक्त नहीं हो पायेगी। डायरी का उद्देश्य अत्यन्त व्यापक नहीं होता, अत: उसके सीमित उद्देश्य की ओर सभी तत्त्व उन्मुख हो, यही एकमात्र सफलता का रहस्य है। डायरी अन्य विधाओं से भिन्न होने के कारण संकेतप्रधान शिल्प अपनाती है। वे संकेत अनेक प्रकार के होते हैं। इन्हें हम निम्न शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं -

1) विवरणात्मक संकेत 2) प्रतीकात्मक संकेत 3) मनोवैज्ञानिक संकेत
4) समस्यामूलक संकेत 5) उद्दश्योन्मुख संकेत 6) संवेदनामूलक संकेत.

संकेतात्मकता सामान्यत: बिम्बों का आश्रय ग्रहण करती है जिससे की सम्पूर्ण परिस्थिति छोटे-छोटे छबिचित्रों के माध्यम से प्रस्तुत की जा सके।

4) उद्देश्य : प्राचीन काल से ही साहित्य को सोद्देश्य रचना माना जाता है। साहित्य की सभी विधाएं किसी न किसी अनुभूति को प्रत्यक्ष कराने का प्रयास करती है। डायरी में चित्रित लेखक के स्वानुभवों को पाठकों के सामने

रखकर उन्हें प्रेरित करना लेखक का उद्देश्य होता है। डयरी साहित्य का उद्देश्य तो मात्र आत्मचित्रण है पर उसकी छबियां बहुमुखी होती हैं। डायरी का मुख्य उद्देश्य आत्मालोचन, आत्मविवेचन, आत्मविश्लेषण होता है, जिनसे पाठक की ज्ञानवृद्धि होती है और भरपूर प्रेरणा मिलती है। महान डायरीकार गांधीजी की प्रेरणा से अनेक व्यक्तियों ने जैसे - महादेव देसाई, राजेन्द्र बाबू, बिनोबा, जमुनालाल बजाज, घन:श्याम दास बिडला, नरदेव शास्त्री आदि ने व्यक्तिगत डायरियाँ लिखी। इन सबका उद्देश्य आत्मालोचन रहा। पश्चिम से आई यथार्थता पर आधारित इस विधा में 'सत्य' की प्रधानता पर गांधीजी ने बल दिया।

5) भाषाशैली : पहले शैली को साहित्यकार के व्यक्तित्त्व का अंग माना जाता था, जबकि अब उसे रचना के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। रचना प्रक्रिया के अन्तर्गत शैली को स्थान प्राप्त होने से अब यह धारणा बढ गई है कि रचना की विवेचना के समय तत्त्वों का पालन अलग-अलग विवेचन न करके उसका समग्र रूप में विवेचन होना अनिवार्य है।

शैलियों पर विचार करें तो कह सकते हैं कि इनमें वैविध्य बहुत अधिक है तथा नित्य नवीन प्रयोग हो रहे हैं। अब तक निम्न रूप उपलब्ध हो चुके हैं -

1) कलात्मक शैली	2) निबंध शैली	3) तरंग शैली	4) वर्णनात्मक शैली
5) संवाद शैली	6) सूक्ति शैली	7) सम्बोधन शैली	8) आत्मकथात्मक शैली

डायरी के प्रकार :

श्री. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने भी 'डायरी को स्वतन्त्र विधा मानते हुए लिखा है, ''आज डायरी के माध्यम से विभिन्न समस्याएँ और विचार प्रस्तुत होने लगे हैं। डायरी का सम्बन्ध प्रत्यक्षत: एक व्यक्ति से होने के कारण इसमें वैयक्तिकता की प्रधानता होती है। प्रत्येक समस्याओं पर डायरी-लेखक आत्मपूरक दृष्टि डालता है। वह आत्मचिन्तन और अपने भोगे हुए सन्दर्भों को प्रस्तुत करता है।''

डायरीकार तात्कालिक संवेदनात्मक भावों की अभिव्यक्ति करता है। डायरी लेखन में व्यक्ति सापेक्षता अधिक रहती है। डायरी लेखन विधा में लेखक के आत्मीय गुण तथा प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है। डायरीकार समय-समय पर अतीत के अनुभवों की पुनर्समीक्षा करता हुआ आगे बढता है।

डायरी साहित्य के प्रकार इस तरह होते हैं -

1) व्यक्तिगत डायरी

2) वास्तविक डायरी

3) काल्पनिक डायरी

4) साहित्यिक डायरी

1) व्यक्तिगत डायरी : व्यक्तिगत डायरी का सम्बन्ध व्यक्तिविशेष से होता है। इस प्रकार की डायरी में लेखक अपने जीवन के घटना-प्रसंगों, निजी अनुभूतियों, विचारों अथवा आवश्यक तथ्यों को लिखता रहता है।

व्यक्तिगत डायरियों से साहित्य को भी पर्याप्त योगदान मिलता है। साहित्यकार अपने अंतरंग साहित्यिक मित्रों के व्यक्तित्व की टिप्पणी डायरी में नोट कर लेता है। अपनी अन्तश्चेतना के मूर्त-विचार तथा अपनी धारणा को डायरी के पृष्ठों में उतारकर पर्यालोचन करता रहता है और एक दिन यही डायरी उसके और उल्लिखित मित्रों के व्यक्तित्व को प्रकाशित कर देती है। अत: यह मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है कि डायरी की वैयक्तिकता से साहित्य का कोई सम्बन्ध नहीं।

2) वास्तविक डायरी : वास्तविक डायरी किसी विशिष्ट व्यक्ति तक ही सम्बन्ध रखती है। ये डायरियाँ गोपनीय होती हैं। व्यक्ति अपने यथार्थ को इनमें अंकित करता रहता है। ये अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि ये वास्तविकता को लिए हुए होती हैं। इस संदर्भ में श्री. तिवारी कहते हैं - ''ऐसी डायरियाँ तथ्यपूरक होती है। और उस व्यक्ति के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी उपस्थित करती हैं। ऐसी डायरियां प्राय: गोपनीय और व्यक्तिगत होती हैं। इनका साहित्यिक मूल्य नहीं होता। इन डायरियों के लिए विषय की कोई सीमा नहीं है यै लेखक की प्रकृति के अनुसार किसी भी घटना, अनुभूति और विचार को लेकर लिखी जाती है। इनका सम्बन्ध लेखक के साथ पाठक से भी होता है।

3) काल्पनिक डायरी : साहित्य में सर्वप्रथम 'डायरी' को शैली के रूप में स्वीकार किया गया। शनै: शनै: साहित्यिक विधा के रूप में इसका प्रवर्तन हुआ। साहित्यिक डायरी में कल्पना को स्थान दिया जाता है। साहित्यकार कल्पना में यथार्थता को जीने की अनुभूति करता है। ऐसी डायरियों में रचनात्मक साहित्य का सृजन होता है। जिसमें क्रमबद्धता अथवा अनवरतता बनी रहती है। काल्पनिक साहित्य होते हुए भी अन्य विधाओं की तरह इस विधा में भी सरसता रहती है, जिससे पाठक के मन में ऊबन पैदा नहीं होती। डायरी लेखन में कही एकालाप, कल्पित पात्र से बातचित, कहीं विचार मंथन की गहनतम स्थितियों में प्रवेश, कहीं संसार से उपेक्षित होने या अपेक्षा करने की वृत्तियों का उदय, कही आन्तरिक गुण-दोषों की अभिव्यक्ति आदि विशेषताएँ इस विधा को आनंददायी बना देती हैं। डायरी लेखक का प्रत्येक पृष्ठ पठनीय होता है, क्योंकि प्रत्येक पृष्ठ एक उद्देश्य की सार्थकता को सिद्ध करता है।

4) साहित्यिक डायरी : साहित्यिक डायरी में रचनाशैली, ललित कल्पना, मनोविश्लेषण, तर्क, कविता, आत्माख्यान आदि विविध प्रवृत्तियों का मनोरमन समन्वय रहता है। डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने डायरी को साहित्यिक विधा स्वीकारते हुए सिद्ध किया है , ''घटनाबद्ध लेखन के उन तीव्रानुभूतिमय एकान्तिक क्षणों में विचवारान्विति एवं शिल्पगत मार्दव का न होना सहज ही है। इसीलिए कुछ समीक्षण, सापेक्षता के आधिक्य के कारण 'डायरी-लेखन' को साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकारते हुए संकोच का अनुभव करते हैं। पर सच बात यह है कि हमें डायरी शैली में आत्मीयता, वैचारिक स्पष्टता, मित्रवत डायरी के पृष्ठों पर हृदय खोलकर रखने की प्रवृत्ति, विचार-भावों के बोझ की कम करने की छूट देखने को मिलती है।''

साहित्य की अन्य कोई ऐसी विधा नहीं है, जिसके माध्यम से रचनाकार अपने मन की गूढ अनुभूतियों को सहजत तथा निष्पक्ष भाव से अभिव्यक्ति दे सके। यह एक सुस्पष्ट तथा तथ्यात्मक अभिव्यंजना के निमित्त स्वतंत्र साहित्यिक विधा है।

आधुनिक युग में डायरी साहित्य का सृजन हुआ। अभी तक इस विधा को समृद्ध नहीं कहा जा सकता। जिन लेखकों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में डायरी साहित्य प्रकशित कराया उनके नाम हैं - शिवराज सिंह चौहान, नरेश मेहता एवं बैकुण्ठ नाथ मेहरोत्रा आदि।

सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं-धर्मयुग, निकष, हिन्दुस्तान ज्ञानोदय, कादम्बिनी कल्पना, माध्यम, बिन्दु तथा सारिका आदि में उन लेखकों की डायरियाँ प्रकाशित हुई हैं, जो इस विधा के आन्दोलन के प्रवर्तन मण्डल में हैं। ज्ञानोदय पत्रिका ने इस विधा की समृद्धी में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। इस पत्र में सर्वाधिक डायरियां प्रकाशित हुई हैं।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. कथोपकथन या ..... को नाटक का महत्त्वपर्ण अंग माना गया है।
   (संवाद/चरित्र-चित्रण/भाषाशैली/कथावस्तु)
2. अरस्तू ने ..... को नाटक की आत्मा कहा है।
   (कथानक/भाषाशैली/अभिनय/उद्देश्य)
3. नाटक में प्रतिनायक, नायक का विरोध ..... होता है।
   (मित्र/सहायक/प्रिय)
4. देश-काल-वातावरण तत्त्व की अवधारणा नाटक में ..... प्रकार से की जा सकती है।
   (तीन/चार/पाँच/दो)
5. पाश्चात्य नाट्यशास्त्री 'उद्देश्य' को नाटक का ..... तत्त्व मानते हैं।
   (मुख्य/गौण/सहज/सुलभ)
6. ..... के कारण ही नाटक को 'दृश्यकाव्य' की संज्ञा प्राप्त है।
   (भाषा/संवाद/अभिनय/चरित्र)
7. सात्विक भाव ..... प्रकार के होते हैं।
   (सात/आठ/नौ/दस)
8. प्राचीन भारतीय आचार्यों ने संवाद के ..... भेद बतलाए हैं।
   (दो/तीन/चार/पाँच)
9. प्रकरी ..... लघु कथावस्तु है।
   (अधिकारिक/प्रासंगिक/मुख्य/गौण)

10. अरस्तू का मानना है कि चरित्र ..... के अनुरूप होने चाहिए।
(जीवन/नाटक/मंच/अभिनय)

11. उपन्यास में वर्गप्रधान चरित्रों में ..... विशेषताओं का चित्रण होता है।
(जातीय/सामाजिक/सांस्कृतिक/धार्मिक)

12. समानता और विभिन्नता दिखाना ..... का मुख्य कर्तव्य है।
(नाटक/उपन्यास/कहानी/कथा)

13. ..... उपन्यास का प्रधान अंग है।
(वातावरण/समय/काल/प्रसंग)

14. उपन्यासकार की अभिव्यक्ति का साधन ..... है।
(शैली/वृत्ति/विचार/मत)

15. उपन्यास चाहे सुखान्त हो या दुखान्त दोनों से ..... की अनुभूति होती है।
(आनन्द/दुःख/नैराश्य/विकार)

16. मैं उपन्यास को ..... चरित्र का चित्र समझता हूँ।
(देश/मानव/समाज/धर्म)

17. प्रेमाश्रय उपन्यास के लेखक ..... हैं।
(प्रेमचंद/रेणू/जैनेंद्र/प्रसाद)

18. मार्क्सवादी मनोविज्ञान एक प्रकार से ..... का मनोविज्ञान है।
(रोटी/कपडा/मकान/जाति)

19. बलचनामा उपन्यास के लेखक ..... हैं।
(रेणू/नागार्जुन/हिमांशु/उदय शंकर)

20. 'सौ अजान एक सुजान' एक ..... का उपन्यास है।
(हास्यरस/करूणरस/वीररस/शोकरस)

21. डायरी शब्द ..... भाषा का है।
(हिंदी/अंग्रेजी/उर्दू/मराठी)

22. व्यक्तिगत डायरी का सम्बन्ध ..... विशेष से होता है।
(समाज/व्यक्ति/अर्थ/धर्म)

23. साहित्यिक डायरी में ..... को स्थान दिया जाता है।
(कल्पना/विचार/पाठक/लेखक)

24. सर्वप्रथम डायरी को ..... के रूप में स्वीकार किया गया।
(शैली/भाषा/साहित्य/पत्रिका)

25. ..... डायरी का मुख्य उद्देश्य है।
(आत्मालोचन/आत्माभिमान/स्वाभिमान/अभिमान)

26. डायरी विधा में 'सत्य' की प्रधानता पर ..... जी ने बल दिया।
(नेहरू/तिलक/आंबेडकर/गांधी)

27. डायरीकार समय-समय पर ..... के अनुभवों की पुनर्समीक्षा करता हुआ आगे बढता है।
(अतीत/समाज/मनुष्य/धर्म)

28. डायरी विधा ..... के समीप पहुँच जाती है।
(आत्मकथा/कविता/नाटक/कहानी)

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **विधा** - प्रकार
2. **बेजान चरित्र** - निर्जीव पात्र
3. **शैली** - पद्धति
4. **कथोपकथन** - पात्रों की आपसी बातचीत, संवाद
5. **डायरी** - दैनंदिनी
6. **निजी** - व्यक्तिगत

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. कथोपकथन या संवाद	2. कथानक	3. अविरोध	4. तीन	5. मुख्य
6. अभिनय	7. आठ	8. तीन	9. प्रासंगिक	10. जीवन
11. जातीय	12. उपन्यास	13. वातावरण	14. शैली	15. आनन्द
16. मानव	17. प्रेमचन्द	18. रोटी	19. नागार्जुन	20. हास्यरस
21. अंग्रेजी	22. व्यक्ति	23. कल्पना	24. शैली	25. आत्मालोचन
26. गांधी	27. अतीत	28. आत्मकथा.		

2.7 सारांश :

1. पाश्चात्य विद्वानों ने कथावस्तु, पात्र चरित्र-चित्रण, कथोपकथन या संवाद, देश-काल-वातावरण, उद्देश्य, भाषाशैली तथा अभिनेयता को नाट्य तत्त्वों के रूप में मान्यता दी है। नाटक को दृश्यकाव्य भी कहा जाता है।

2. उपन्यास बृहत आकार की वह गद्य विद्या है, जिसमें मानव जीवन की सुख-दु:खात्मक अनुभूतियों को यथार्थ और कल्पना के मिश्रण से कलापूर्ण कथात्मकरूप देकर अभिव्यक्त किया जाता है।

3. पाश्चात्य कथा शास्त्र में उपन्यास के छ: तत्त्व माने गए हैं - कथावस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश-काल-वातावरण, भाषाशैली, उद्देश्य। उपन्यास जनसाधारण के लिए लिखा जाने के कारण उसकी भाषा सरल एवं स्पष्ट होती है।

4. सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, आँचलिक उपन्यास, हास्य-व्यंग्यात्मक उपन्यास, घटना प्रधान उपन्यास, चरित्र-प्रधान उपन्यास इन्हीं उपन्यासों को ही प्रमुख भेदों के रूप में स्वीस्कृती दी है।

5. डायरी किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति पर प्रकाशित होने पर वही सार्वजनिक हो जाती है। डायरी में लेखक शुद्ध हृदय से वही लिखता है जो अनुभव करता है। वह अपने मन के भावों को सत्यता के साथ प्रस्तुत करता है।

6. हिन्दी में डायरी को 'दैनंदिनी' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त रोजनामचा, बासरी, दैनिकी, रोजनिशी आदि शब्द प्रचलित हैं।

2.8 स्वाध्याय :

1. नाटक के पश्चिमी तत्त्वों को स्पष्ट कीजिए।
2. उपन्यास का स्वरूप बताकर उपन्यास के तत्त्वों का विवेचन कीजिए।
3. उपन्यासों के मुख्य प्रकारों का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. डायरी का स्वरूप बताकर डायरी के तत्त्वों का परिचय दीजिए।
5. डायरी के प्रकार स्पष्ट कीजिए।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' नाटक पढकर नाट्य-तत्त्वों की दृष्टि से उसकी समीक्षा करने की कोशिश करे।
2. प्रेमचन्द का 'प्रेमाश्रय' उपन्यास पढकर औपन्यासिक तत्त्वों की दृष्टि से उसकी आलोचना लिखने की कोशिश करें।
3. महात्मा गांधीजी, राजेन्द्र बाबू, जमुनालाल बजाज, घन:श्यामदास बिडला आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों की डायरी पढकर उनकी डायरियाँ कौनसे प्रकार के अन्तर्गत आती हैं, इसे जानने की कोशिश करें।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1.	काव्यशास्त्र	:	डॉ. भगीरथ मिश्र
2.	भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत	:	डॉ. मक्खनलाल शर्मा
3.	भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र	:	डॉ. यतीन्द्र तिवारी
4.	साहित्यशास्त्र	:	डॉ. नारायण शर्मा
5.	शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (भाग 1 और 2)	:	डॉ. गोविंद त्रिगुणायत
6.	भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत	:	डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
7.	साहित्य में गद्य की नई विविध विधाएँ	:	डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, रचना भाटिया

○●○

सत्र VI : इकाई 3

आलोचना

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय-विवेचन

3.3.1 आलोचना : स्वरूप

3.3.2 आलोचना के प्रकार

3.3.2.1 सैद्धांतिक आलोचना

3.3.2.2 मनोवैज्ञानिक आलोचना

3.3.2.3 तुलनात्मक आलोचना

3.3.2.4 मार्क्सवादी आलोचना

3.3.3 आलोचक के गुण

3.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप -

1. आलोचना और उसके पर्यायवाची शब्दों से परिचित होंगे।
2. आलोचना के स्वरूप से अवगत होंगे।
3. आलोचना के मुख्य प्रकारों को समझने में समर्थ होंगे।
4. आलोचक के लिए आवश्यक गुणों से परिचित होंगे।
5. किसी भी कृति की आलोचना करने की क्षमता प्राप्त करेंगे।
6. अन्य नव विधा का अध्ययन करने के लिए प्रेरित होंगे।

3.2 प्रस्तावना :

मनुष्य की विवेक शक्ति का विकास जैसे जैसे होता गया वैसे-वैसे साहित्य के साथ उसका संबंध बढता गया। साहित्य और आलोचना का संबंध प्राचीन काल से रहा है। इस संबंध को समझने के लिए हमें आलोचना और आलोचक से परिचित होना आवश्यक है परिणाम स्वरूप पाठ्यक्रम में आलोचना के स्वरूप, प्रकार तथा आलोचक के गुण आदि का समावेश किया गया है। आलोचना का स्वरूप क्या है? आलोचना के लिए पर्यायवाची शब्द कौन-कौन से हैं? आलोचना के महत्त्वपूर्ण प्रकार कौनसे हैं? एक सफल आलोचक के लिए कौनसे गुण आवश्यक हैं? आदि प्रश्नों के संदर्भ में हम प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करेंगे।

3.3 विषय विवेचन :

हिंदी में आलोचना के अर्थ को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं। 'आलोचना' के पर्यायवाची शब्द 'समालोचना' और 'समीक्षा' हैं। इनके अतिरिक्त आलोना के लिए 'विवेचना' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। लेकिन उन सभी शब्दों में सूक्ष्म अंतर अवश्य है। आलोचना का सामान्य अर्थ किसी वस्तु या व्यक्ति के गुण दोषों की चर्चा करना है, किंतु साहित्य के क्षेत्र में इसे थोडे भिन्न एवं व्यापक अर्थ में देखा जाता है। आलोचना शब्द 'लोच' धातु में 'आ' उपसर्ग लगने से बना है। 'लोच' का अर्थ है 'देखना'। अत: व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से आलोचना का अर्थ हुआ - 'किसी वस्तु को विशेष मर्यादित अथवा नियंत्रित दृष्टि से देखना, याने आलोचना ही है।' हो सकता है कि इसमें केवल गुणों की ही सराहना की जा सके अथवा केवल दोषों का ही कथन किया जा सकें। इसलिए 'आलोचना' शब्द को 'सम' उपसर्ग जोडकर 'समालोचना' शब्द बनाया। जिसका यह अर्थ हुआ कि संतुलित दृष्टि से किसी रचना के गुण-दोषों को अभिव्यक्त करना। लेकिन विद्वानों को इससे भी समाधान नहीं मिला परिणामस्वरूप 'समीक्षा' शब्द का उदय हुआ। 'समीक्षा' शब्द में भी गुण-दोषों के प्रति समान दृष्टि की अपेक्षा है। इस प्रकार शब्दगत अर्थ की दृष्टि से आलोचना की अपेक्षा समालोचना अथवा समीक्षा शब्द अधिक उपयुक्त हे। किंतु अब तिनों शब्द समान अर्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं।

3.3.1 आलोना का स्वरूप :

किसी साहित्य कृति का सूक्ष्म अध्ययन करके तटस्थ तथा निष्पक्ष दृष्टि से उसके गुण-दोषों का कथन करना 'आलोचना' कहलाता है। लेकिन कुछ लोग रचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त साहित्य से संबंधित अन्य समस्त

बातों को आलोचना का हिस्सा समझते हैं। वे साहित्यानुसंधान, काव्य का इतिहास और काव्यशास्त्र एवं काव्यसिद्धांतों को भी आलोचना के अंतर्गत सम्मिलित करते हैं। परंतु यह मत गलत एवं भ्रांतिपूर्ण है। आलोचना का स्वरूप इन तीनों से भिन्न है। जिसे हम निम्न रूप में स्पष्ट करेंगे।

✷ अनुसंधान और आलोचना :

अनुसंधान का मुख्य कार्य अज्ञात तथ्यों की खोज अथवा ज्ञात तथ्यों की नवीन व्याख्या है। जब तक तथ्यों या दृष्टिकोन संबंधी नवीनता न हो, तब तक उसे अनुसंधान की कोटि में नहीं रखा जा सकता। परंतु आलोचना का कार्य किन्हीं मानदंडों के आधारपर विशेषताएँ बताना, व्याख्या करना अथवा मूल्यांकन करना है। अत: अनुसंधान की समस्त कृतियाँ आलोचना नहीं हो सकती और न ही आलोचना की समस्त कृतियाँ अनुसंधान हो सकती हैं।

✷ इतिहास और आलोचना:

साहित्येतिहास और आलोचना भी एक नहीं है। इन दोनों की प्रक्रियाओं में भिन्नता है। इतिहास का प्रमुख ध्येय कालक्रम में लेखक और कृति की व्यवस्था और उसका स्थूल परिचय है। इसके विपरीत आलोचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ध्यान रखती हुई लेखक के महत्त्व का प्रकाशन, कृति की मूल्यांकन संबंधी विवेचना, कृति की व्याख्या और उसकी विशेषताओं का स्पष्टीकरण करती है। ऐतिहासिक आलोचना इतिहास की पृष्ठभूमि ग्रहण करती है। पर वह इतिहास नहीं है। इतिहास तथ्यों के अनुसंधान के अनुसार अपनी व्यवस्था और मान्यताओं में परिवर्तन और संशोधन करता रहता है। अत: आलोचना से अधिक उसका संबंध अनुसंधान से है।

✷ काव्यशास्त्र और आलोचना :

काव्यशास्त्र और काव्य-सिद्धांत को भी कुछ लोगो ने आलोचना का एक रूप माना है। परंतु दोनों में अंतर है। काव्यशास्त्र या काव्य-सिद्धांत समस्त काव्य में व्याप्त उसके स्वभाव, सौंदर्य, प्रक्रिया, प्रभाव आदि से संबंधित नियमों और सिद्धांतों का विश्लेषण और विवेचन करता है। तो आलोचना उन सिद्धांतों और नियमों को मानदंड या कसौटी के रूप में स्वीकार करती है। आलोचना निराकार नियमों और सिद्धांतों की खोज नहीं करती, बल्कि कवि की कृति की व्याख्या या मूल्यांकन करती है।

✷ आलोचना की परिभाषाएँ :

कुछ विद्वानों ने आलोचना की परिभाषा निम्न प्रकार से की है।

रिचर्डस् : 'To set up as a critic is to set up as a judge of values.' अर्थात मूल्य निर्धारित करना याने आलोचना ही है।

कार्लाइल : 'Literary Criticism is nothing and should be notheing but the recital of one's personal adventures with a book.' मतलब यह कि, आलोचना याने पुस्तक के प्रति उद्‌भुत आलोचक की मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम ही है।

बाबू गुलाबराय : 'आलोचना का उद्‌देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को

उस प्रकार के आस्वादन में सहायता देना; तथा उसकी रूचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।'

डॉ. श्यामसुंदर दास : 'साहित्य क्षेत्र में ग्रंथ को पढकर उसके गुण और दोषों की विवेचना करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना, आलोचना कहलाती है।'

आलोचना संबंधी उपर्युक्त परिभाषाओं का यदि ध्यान से अध्ययन करें, तो हमें स्पष्ट अनुभव होगा कि विद्वानों के आलोचना संबंधी अपने-अपने दृष्टिकोणों के अनुरूप ही उसके स्वरूप की व्याख्या की है।

3.3.2 आलोचना के प्रकार :

वर्तमान युग में समालोचना का क्षेत्र बहुत विस्तृत एवं व्यापक हो चुका है। साहित्य के विविध अंगों का सूक्ष्म विवेचन और उनके मूल्य-निर्धारण के अतिरिक्त उसके मूल में कार्य कर रही सूक्ष्म प्रवृत्तियों का विश्लेषण भी अब आलोचना का ही कार्य माना जाता है। इस कार्य की पूर्ति के लिए आलोचना की विभिन्न पद्धतियाँ विकसित हुई हैं। लेकिन पाठ्यक्रम में इनमें से केवल सैद्धांतिक आलोचना, मनोवैज्ञानिक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, मार्क्सवादी आलोचना का ही समावेश किया गया है।

3.3.2.1 सैद्धांतिक आलोचना :

इस प्रकार की आलोचना को अंग्रेजी में 'Speculative Criticism' कहते हैं। इसमें साहित्य के विभिन्न रूपों का विवेचन करके साहित्य तत्त्व प्रस्थापित किए जाते हैं। सैद्धांतिक आलोचना में शास्त्रीय मानदंडों को निश्चित किया जाता है। यहाँ एक ही प्रकार की अनेक कृतियों का अध्ययन कर शास्त्रीय मानदंडों के रूप में जब किन्हीं सामान्य नियमों की स्थापना की जाती हैं, तब उस आलोचना को सैद्धांतिक आलोचना कहा जाता है। इन सामान्य शास्त्रीय नियमों के आलोक में साहित्यिक विधाओं का अध्ययन कर मूल्य-निर्धारन किया जाता है। किसी कृति-विशेष का मूल्यांकन करते समय किन-किन सामान्य सिद्धांतों का अवलंब करना चाहिए, साहित्यिक विधाओं की विवेचना में किन-किन सामान्य तत्त्वों को आधारभूत मानना चाहिए तथा साहित्य की आलोचना में किन-किन सामान्य सिद्धांतों का परिपालन करना चाहिए, आदि समस्त बातों पर प्रस्तुत प्रणाली के अंतर्गत विचार किया जाता है। अत: यहाँ आलोचक की स्वभावगत प्रवृत्तियों को अथवा अभिरूचियों को अधिक अवसर नहीं रहता। प्रस्तुत प्रणाली के आलोचक का प्रधान ध्येय शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर रचनाओं का मूल्य निर्धारण करना है। अर्थात् यहाँ आलोचक का कार्य केवल किसी कृति के औचित्य अथवा अनौचित्य का निर्देश करना नहीं है, बल्कि उन नियमों एवं सिद्धांतों को खोज निकालना है, जिनके आधार पर उन कृतियों का निर्माण हुआ है।

इस आलोचना के अंतर्गत साहित्य के विभिन्न रूपों का विवेचन करके साहित्य-तत्त्व प्रस्थापित किए जाते हैं। जैसे कविता क्या है? उसका उद्देश्य क्या हैं? समाज की दृष्टि से उसका क्या लाभ है? आदि विविध बातों को इसी पद्धति से निर्धारित किया जाता है। समीक्षा का यह शास्त्रीय अंग या पक्ष होता है। रीतिकाल के विविध लक्षण ग्रंथ इसके उत्तम उदाहरण हैं। वास्तव में रचनात्मक साहित्य के दो प्रमुख पक्ष होते हैं, एक कवि का पक्ष तथा दूसरा वाचक का पक्ष। इसलिए काव्य क्या है? यह स्पष्ट करते समय केवल इस पक्ष का अनुशीलन किस दृष्टि से तथा कैसा होना

चाहिए, पाठकों में साहित्याभिरूचि कैसी पैदा हो, परंपरामुक्त साहित्य अभिरूचि के अनुसार काव्य का अनुशीलन करने में कौनसी त्रुटियाँ होती हैं, कैसी साहित्याभिरूचि वांछनीय है आदि प्रश्नों के उत्तर स्पष्टता से देना आवश्यक होता है। उसके बाद कुछ निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाना सैद्धांतिक समीक्षा में अत्यंत आवश्यक है। ये सारे विषय उसके गवेषणा या शोध के होते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का 'चिंतामणी' (भाग 1 और 2), बाबू गुलाबराय का 'सिद्धांत और अध्ययन' इसके प्रमुख उदाहरण हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास इसे ही समालोचना का चिरंतन स्वरूप मानते हैं।

3.3.2.2 मनोवैज्ञानिक आलोचना :

इस प्रकार की आलोचना को अंग्रेजी में 'Psychological Criticism' कहते हैं। प्रस्तुत आलोचना बिसवीं शताब्दी की देन है। अत: मनोविज्ञान के पाश्चात्य अभ्यासक फ्रायड, युंग और एडलर के मनोविश्लेषण संबंधी सिद्धांतों का प्रभाव जैसे हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर परिलक्षित होता है, वैसे हिंदी आलोचना के स्वरूप पर भी दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत आलोचना का प्रधान उद्देश्य रचनागत पात्रों की, प्रवृत्तियों की, आदर्शों की एवं भावधाराओं की अंत: प्रेरणाओं का मनोविश्लेषण करना है।

वस्तुत: रचनाकार का मन अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल विचारधाराओं का संधान होता है। फलसवरूप कभी आनंद कभी दु:ख का भाव प्रकट होता है। अत: उसकी रचना मनोगत भाव-भावनाओं का दर्पण होती है। इसलिए किसी भी रचना की परख करने के पूर्व रचनाकार के मन:स्तरों का अध्ययन करना भी आवश्यक है। अत: मनोवैज्ञानिक आलोचक की सफलता रचनाकार की मानसिक प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए सही-सही मूल्यांकन करने पर निर्भर है। बाह्य परिस्थितीयों से रचनाकार के मन में कभी अनुकूल और प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं का जो आंदोलन निर्माण होता है, उसका सरल अध्ययन करना पडता है। इस अध्ययन के उपरांत ही आलोचक को रचनागत अंतस प्रेरणाओं का विश्लेषण करना सुलभ होता है।

यह आलोचना बहुत कुछ व्याख्यात्मक ही होती है। इसका मूल ध्येय यही रहता है कि आलोच्य कृति के मूल भावों तथा प्रेरणाओं का विश्लेषण, कृतिकार के मन का अध्ययन करते हुए करना। इसमें बाह्य परिस्थितियों से भी आंतरिक भावप्रतिक्रिया का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। कवि या लेखक की मन:स्थिति, सामाजिक परिस्थिति, उसका स्वभाव आदि बातों का परिपूर्ण विचार करके निष्कर्ष निकाला जाता है। आजकल हिंदी में इस प्रकार मनोवैज्ञानिक आलोचना की जाने लगी है। इसमें प्रमुखता से कृतिकार की रूचि, अंतर्प्रवृत्ति तथा परिस्थिती आदि बातों का विश्लेषण रहता है।

इसे आलोचना साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत प्रणाली का निम्न उदाहरण है - 'बच्चन का कवि जीवन के उल्लास से भी उल्लसित हुआ है और विषाद से विषण्ण। उनकी रचनाओं में जीवन के परिस्थितिमूलक चित्र अनेक भरे पडे हैं। अपनी प्रिय पत्नी के देहांत के बाद कवि की वृत्तियाँ जीवन और जगत की नश्वरता पर प्रहार करने लगी और 'एकांत संगीत' तथा 'निशा-निमंत्रण' के रूप में उनकी सारी वेदना मुखरित हो गई।'

3.3.2.3 तुलनात्मक आलोचना :

इस प्रकार की आलोचना को अंग्रेजी में 'Comparative Criticism' कहते हैं। इसमें एक ही विषय पर दो या

अधिक साहित्यकारों की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। उसके विविध अंगोउपांगों पर आलोचक प्रकाश डालता है। इस प्रकार वह उनका मूल्यांकन करता है। इसका प्रादुर्भाव जोसेफ एडिसन की आलोचना से हुआ। तुलना इस आलोचना का आवश्यक अंग है। तुलनात्मक मूल्य निर्धारण ही इस आलोचना का लक्ष्य होता है। साहित्य के सामाजिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व की प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

इसके अंतर्गत आलोचक अपने विषय के प्रतिपादनार्थ दोनों की रचनाओं का अध्ययन कर उनके विविध अंगों पर प्रकाश डालता है। इस कोटि की आलोचना में मूल्य निर्धारण की भावना विद्यमान रहती है। इसके अंतर्गत अपनी रूचि के अनुसार किसी कवि के प्रति अन्याय भी किया जा सकता है। साधारणतया तुलनात्मक दृष्टि आलोचना में तभी श्रेयस्कर सिद्ध हो सकती है, जब कि वह पूर्ण वैज्ञानिक हो और आलोचक अनासक्त भाव से दोनों पक्षों की समान सहानुभूति से समीक्षा करें।

यह पद्धति उन स्थलों पर उपयोगी होती है, जहाँ हमें तुलनात्मक दृष्टि से किसी को छोटा या बडा सिद्ध नहीं करना होता, वरन एक ही प्रकार की विशेषताओं, नियमों और सिद्धांतों के प्रभाव को स्पष्ट करना होता है। इस तथ्य का ध्यान न रखने पर प्राय: इस आलोचना का परिणाम कटू विवाद होता है। हिंदी में बिहारी और देव की आलोचना और उस संबंध में उत्पन्न विवादास्पद स्थिति इसका ज्वलंत उदाहरण है। शांतिप्रिय द्विवेदी और शचीरानी गुर्टू (Gurtoo) के कुछ लेख इस आलोचना के भीतर आते हैं। पंडित पद्मसिंह शर्मा की आलोचना भी इसी प्रकार की है।

हिंदी साहित्य क्षेत्र में प्रस्तुत प्रणाली का सूत्रपात करने का श्रेय आचार्य पद्सिंह शर्मा जी को दिया जाता है। उनकी 'बिहारी सतसई' प्रस्तुत प्रणाली का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनके बाद पंडित कृष्णबिहारी मिश्र जी का नाम आ जाता है। कृष्णबिहारी में तटस्थता का गुण विद्यमान है।

प्रस्तुत आलोचना का निम्न उदाहरण प्रसिद्ध है - ''सूरदास हिंदी के अन्यतम कवि हैं। उनके जोड का कवि गोस्वामी तुलसीदास को छोडकर दूसरा नहीं हुआ। इन दोनों महाकवियों में कौन बडा है, यह निश्चयपूर्वक कह सकना सरल कार्य नहीं। भाषा पर अवश्य तुलसीदास का अधिकार अधिक व्यापक था। सूरदास ने अधिकतर ब्रज की चलती भाषा का ही प्रयोग किया है। तुलसी का क्षेत्र सूर की अपेक्षा भिन्न है। ..... पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से दोनों का समान अधिकार है। दोनों ही हमारे सर्वश्रेष्ठ जातीय कवि हैं।''

3.3.2.4 मार्क्सवादी आलोचना :

साहित्य और समाज जीवन की अभिन्नता, मार्क्सवादी समीक्षा का प्रथम सैद्धांतिक पक्ष है। इस संदर्भ में मार्क्सवादी विचारक काडवेल का कथन है कि, ''साहित्य का मोती समाज की सीपी से ही उत्पन्न होता है।'' मार्क्सवादी समीक्षा समाज की कसौटी पर साहित्य का मूल्यांकन करती है। साहित्य के इस सामाजिक पक्ष का स्वीकार मार्क्सवादी समीक्षा की प्रधान विशेषता है। सामाजिकता की पृष्ठभूमि का स्वीकार कर यह समीक्षा साहित्य अथवा कला का उद्गम स्थल मनुष्य का मन एवं मस्तिष्क है ऐसा मानते हैं। इस संदर्भ में प्रकाशचंद्र गुप्तजी कहते हैं कि, ''साहित्यकार जिस जीवन की अपने चतुर्दिक हिलोरे मारता हुआ देखता है उसीसे वह प्रेरणा पाता है।'' अत: समाज की गतिविधियों से ही साहित्यकार सामग्री ग्रहण करता है।

छायावाद के ऱ्हास के साथ हिंदी में माक्सर्वादी आलोचना का उदय हुआ। मार्क्सवादी प्रतिमानों के कारण इस पद्धति को मार्क्सवादी आलोचना कहते हैं। साहित्य क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारधारा के आधारपर की हुई रचनाओं को प्रगतिवादी रचनाएँ कहा जाता है। यही प्रचलित नाम है। इसी कारण इस आलोचना पद्धति को प्रगतिवादी आलोचना पद्धति भी कहते हैं। इसके साथ इसकी मूल चेतना आर्थिक तथा उपयोगितावादी होने के कारण इसे उपयोगितावादी आलोचना पद्धति कहते हैं।

गोविंद त्रिगुनायतजी का कहना है, ''हमारी समझ में मार्क्सवादी आलोचना ऐतिहासिक आलोचना का वह विकसित रूप है, जिसमें भाव पक्ष का बौद्धिक एवं उपयोगितावादी उद्घाटन तथा शैली के सरल, स्वाभाविक एवं जन समवेद्य स्वरूप सन्निहित रहता है।''

मार्क्सवादी आलोचना में निम्न महत्त्वपूर्ण बातें होती हैं -

1. इसमें आलोचक काव्य में प्रेषणीयता को ही अधिक महत्त्व देता है।

2. मार्क्सवादी आलोचक काव्य के उपयोगितावादी पक्ष पर अधिक बल देता है। वह उसी काव्य को श्रेष्ठ समझता है, जिसकी उपयोगिता अधिक है।

3. मार्क्सवादी आलोचना में आलोचक उसी कृति के वर्ण-विषय को महत्त्वपूर्ण मानता है, जो जनोपयोगी तथा जनवादी होता है।

4. मार्क्सवादी आलोचना में काव्यशास्त्र के प्रतिष्ठित प्रतिमान की कसौटी को अथवा परंपरागत तत्त्वों को महत्त्व नहीं दिया जाता।

5. मार्क्सवादी आलोचना में सामाजिक या भौतिक यथार्थवाद को बहुत महत्त्व दिया जाता है। जिस कलाकृति में यह रूप जितना स्पष्ट तथा भव्य होगा वह कृति उतनी ही महान बन जाती है।

6. मार्क्सवादी आलोचना में रचना का मूल्यांकन बौद्धिक कसौटी पर होता है।

मार्क्सवादी आलोचकों की मान्यता है कि संघर्ष के आधार पर लेखक को जीवन का विकास दिखाना चाहिए। वे व्यक्ति के सम्मुख समाज को महत्त्व देते हैं और ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते। उनके विचार में वे ही रचनाएँ श्रेष्ठ हैं, जिनमें मार्क्सवादी सिद्धांतों को आदर प्राप्त हुआ है। मार्क्सवादी आलोचना के प्रमुख आलोचक हैं- रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, नामवर सिंह, अमृत राय, प्रकाशचंद्र गुप्त आदि।

इस आलोचना पद्धति के कुछ दोष हैं, जिसके कारण यह लोकप्रिय नहीं हो सकी है, पहली बात है कि समाज को प्रधानता देने के कारण इस वर्ग के आलोचक जीवन के चरम सत्य चित्रण की अवहेलना करते हैं - आंतरिक चेतना को मान्यता नहीं देते। यथार्थ के अग्रह के कारण कल्पना की नितांत अवहेलना करते हैं। साहित्य के चरम उद्देश्य रस-संसार को भौतिक चित्रण की उपलब्धि का साधन मानते हैं जब कि वह स्वयं साहित्य का साध्य है। इस आलोचना में संस्कृति की भी उपेक्षा हुई है, अत: प्रगतिवादी अथवा मार्क्सवादी आलोचना साहित्य को समझने का एक उपकरण है, यह पूर्ण विशाल जीवन को अभिव्यक्त करने वाले साहित्य की आलोचना के लिए पर्याप्त नहीं है।

3.3.3 आलोचक के गुण :

आलोचना का निर्माण करते समय आलोचक को जीवन संबंधी, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं वैज्ञानिक परिस्थितियों पर ध्यान देना पडता है। युगधर्म से प्रस्थापित होकर व्यक्तिगत धारणाओं और पूर्वग्रहों से दूर रहकर निष्पक्ष भूमिका से आलोचना का निर्माण करना पडता है। इसलिए आलोचक में कई गुण अपेक्षित हैं। जब कि आज के वैज्ञानिक युग में कवि और कलाकारों की संख्या बढ रही है तब आलोचक की जिम्मेदारी चौगुना बढ गई है। कलाकार और पाठक के बीच बढते हुए व्यवधान को दूर करते हुए उनके बीच एक स्वस्थ दृष्टिकोण की स्थापना करना आवश्यक हो गया है। अत: यह कार्य करने के लिए आलोचक में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण, साहस, अन्तर्दृष्टि, अतीत का ज्ञान, वर्तमान कालीन समस्याओं का परिणाम, सौंदर्यानुभूति की शक्ति और संवेदनशीलता, अध्ययन एवं मननशीलता का होना अत्यंत आवश्यक हैं आलोचक के गुणोंपर विचार करने से जो गुण ज्ञात होते हैं वे प्रमुख गुण निम्न प्रकार हैं -

✷ सहृदयता :

सहृदयता आलोचक का आवश्यक गुण है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना सहृदय हुए काव्य का रसास्वादन नहीं कर सकता। सहृदय होने से ही वह कृति का सही विवेचन कर सकता है। मुक्त-हृदय से काव्य-कृति में तन्मय होकर, गुणोंपर रीझता हुआ जो आलोचक अपनी आलोचना प्रस्तुत कर सके, वह सहृदय आलोचक है। आलोचक के मन में रचनाकार तथा रचना के प्रति श्रद्धा, सहानुभूति तथा आदर की भावना होनी चाहिए।

✷ विस्तृत ज्ञान :

यदि आलोचक को आलोच्य विषय तथा लोक और शास्त्र का व्यापक एवं सूक्ष्म ज्ञान न होगा, तो वह वर्ण्य-विषय की बारीकियों को समझ ही न पाएगा; उसमें गुण-दोष निकालना तो दूर की बात है। आलोचक का इतिहास, दर्शन, काव्यशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का विस्तृत ज्ञान ही उसे आलोचना की विविध भूमियाँ प्रदान कर सकता है। और कृति की विशेषताओं का विवेचन करने में सहायक हो सकता है। अत: विषय का सांगोपांग विवेचन करने के लिए आलोचक का ज्ञान विस्तृत होना आवश्यक है।

✷ निष्पक्षता :

सहृदयता के साथ-साथ निष्पक्षता के मेल के बिना आलोचक किसी कृति की आलोचना में न्याय नहीं कर सकता। परिचितों और आत्मीयों की कृतियों में उसे गुण ही गुण दिखलाई देंगे और अन्यों की कृतियों में दोष अधिक और गुण कम। आलोचक को न्यायाधीश के समान नीर-क्षीर विवेकी होना आवश्यक है। आलोचक का यह गुण उसकी सूक्ष्म बुद्धि और चरित्र दोनों से ही संबंध रखता है। पाश्चात्य समालोचना शास्त्र में आलोचक के इस गुण को बहुत महत्त्व दिया गया है।

✷ स्वाभाविक प्रतिभा :

स्वाभाविक प्रतिभा के अभाव में कोई भी आलोचक आलोचना क्षेत्र में कभी भी सफल नहीं हो सकता।

स्वाभाविक प्रतिभा के बल पर ही एक आलोचक अपने कथन, निर्णय या मत को सामर्थ्यपूर्ण और प्रभावोत्पादक बना सकता है। इसी कारण हमारे यहाँ काव्योत्पादन और काव्यालोचन दोनों में प्रतिभा को बहुत महत्त्व दिया गया है। हमारे यहाँ प्रतिभा के दो भेद माने गए हैं - कारयत्री और भावयत्री। कारयत्री प्रतिभा का संबंध कवि से होता है और भावयत्री प्रतिभा का सांबंध भावक या आलोचक से होता है।

✷ अन्तर्दृष्टि :

आलोचक में अन्तर्दृष्टि का होना बहुत जरूरी होता है। अन्तर्दृष्टि की विशेषता बहुत कुछ जन्मजात कही जा सकती है। किंतु शिक्षा और अभ्यास आदि से आलोचक की यह विशेषता विकसित हो सकती है। आलोचक अपनी इसी विशेषता के कारण सच्ची आलोचना में समर्थ हो सकता है; क्योंकि आलोचक का कर्तव्य है कि कवि के द्‌वारा की गई जीवनाभिव्यक्ति को पाठक तक पहुँचा देना। आलोचक का यह लक्ष्य तभी पूर्ण हो सकता है, जब उसमें सूक्ष्म अंतर्दृष्टि हो। हडसन तथा फेलेट ने आलोचक के इस गुण को काफी महत्त्वपूर्ण माना है।

✷ शिक्षा और कवित्व शक्ति :

आलोचक को भी कवि के समान शिक्षित होना चाहिए। स्कॉट जेम्स के मतानुसार आलोचक को उसी भूमिका तक पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिए, जिस भूमिका पर कवि रहता है। यह तभी हो सकता है, जबकि आलोचक कवि के समान शिक्षित हो। हडसन ने भी आलोचक के शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा पर जोर दिया है।

अनेक विचारकों ने यह भी माना है कि समालोचक में भी कवि की तरह कवित्व शक्ति होनी चाहिएं बेन जॉनसन ने तो यहाँ तक कहा है कि, ''कवियों की आलोचना केवल कवि ही कर सकते हैं; केवल वे ही कवि, जो काव्य-रचना में श्रेष्ठ समझे जाते हैं।''

✷ वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का होना :

आज की आलोचना के ये आवश्यक उपादान हैं। पाश्चात्य आलोचना शास्त्र में इनके उपर विशेष जोर दिया गया है। वैज्ञानिकता का अर्थ है - वस्तुओं का निष्पक्ष भाव से विश्लेषण। इस प्रकार का विश्लेषण तभी हो सकता है, जब आलोचक स्वभावत: वैज्ञानिक हो। वैज्ञानिकता के साथ-साथ पात्रों के अन्तर्द्‌वंद्‌व से परिचित होने के लिए आलोचक में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का होना भी नितांत आवश्यक है। साहित्य मानव जीवन की अभिव्यक्ति है और आलोचक का कार्य उस साहित्य का मूल्यांकन करना होता है। अत: उसे मानव-मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान हो।

✷ कवि और उसके काव्य के विषय में पूर्ण ज्ञान :

आलोचक का विद्‌वान होना ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह कवि और उसके काव्य के विषय में सभी कुछ जानता हो। तभी वह आलोच्य कृति की सही आलोचना कर सकता है। आलोचक को अपने सिद्‌धांतों के आधार पर कृति की समालोचना करने के स्थानपर, आलोच्य कृति के कृतिकार की रूचि तथा परिस्थितियों के आधार पर करनी चाहिएं अत: उनका ज्ञान आलोचक का विशेष गुण है।

✷ कृतिकार के साथ तादात्म्य :

समालोचक का एक गुण यह भी है कि वह समालोचन करते समय स्वयं को भी उन्हीं परिस्थितियों में अनुभव करें। जिनमें आलोच्य कृतिकार रहा हो। इस तादात्म्य से कृति की गहराई से समालोचना हो सकती है।

✷ प्रेषण की क्षमता :

आलोचक में अपनी सहानुभूति को दूसरों तक प्रेषित करने की क्षमता होनी अपेक्षित है। उसका कार्य केवल यह नहीं है कि वह स्वयं किसी कलाकृति का आनंद ले; अपितु उस आनंद को पाठकों तक प्रेषित करें। इस संबंध में हेलन गार्डनर ने कहा है, ''एक अच्छे आलोचक में अच्छी एवं बुरी कविता का भेद करने की क्षमता का होना उतना आवश्यक नहीं, जितना कि उसके अभिप्रेत सौंदर्य को सहज एवं ग्राह्य शब्दावली में प्रस्तुत करना।''

✷ निर्णयात्मक शक्ति :

आलोचक का कर्म निर्णय प्रधान होता है। अत: उसका यह सर्वोपरि गुण है कि वह स्पष्ट और सही निर्णय ले सके। सही विषय-बोध, अपने व्यक्तित्त्व की सशक्तता एवं अभिव्यक्ति की स्पष्टता से ही समालोचक सही निर्णय ले सकता हे।

✷ अभिव्यक्ति कौशल :

यदि समालोचक में अभिव्यक्ति कौशल नहीं है तो समालोचना स्वयं में प्रभावहीन हो जाएगी। जब समालोचना ही नीरस और प्रभावहीन होगी, तो वह जो निर्णय देगी, उसका पाठकों पर प्रभाव ही क्या पडेगा ? अत: समालोचक के लिए यह भी आवश्यक है कि उसकी अभिव्यक्ति सक्षम हो।

✷ सहानुभूति :

सहानुभूति आलोचक का आवश्यक गुण है। लौंगफेलो ने इस बात का समर्थन किया है। हमारे यहाँ भी इस तथ्य का समर्थन दूसरे ढंग से किया गया है। किसी ने ठीक ही कहा है - ''शिवजी की भाँति बुधजन गुण और अवगुण दोनों ग्रहण करते हैं। किंतु चंद्रमा की भाँति गुणों को सिरपर रख प्रकाशित करते हैं और दोषों को विष की भाँति गले के भीतर ही रखते हैं।'' इस लक्ष्य तक आलोचक तभी पहुँच सकता है, जब उसमें सहानुभूति का विशेष गुण हो।

✷ औचित्य ज्ञान :

आलोचक को किसी रचना के गुण-दोषों के विवेचन में औचित्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हमारे यहाँ तो औचित्य को बहुत महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार का औचित्य ज्ञान उसी समालोचक में हो सकता है, जो सत्यप्रिय और ईमानदार हैं, जिसमें धीरता और स्थिरता आदि स्वाभाविक गुण हैं, तथा जो स्वभाव से गंभीर है।

✷ छिद्रान्वेषी प्रकृति का निराकरण :

यद्यपि काव्य की समालोचना के लिए जब समालोचक प्रवृत्त होता है, उस समय सम्यक विवेचना के लिए गुणों के साथ-साथ दोषों को भी प्रदर्शित करता है; पर इसमें सुधार भावना होनी चाहिए, न कि घिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति। टी. राइमर ने कहा है, '' किसी श्रेष्ठ कलाकार के दोषों का प्रदर्शन और गुणों पर परदा डालना अच्छे आलोचक का गुण नहीं है।''

✷ **व्यक्तित्व :**

आलोचक का व्यक्तित्व विशिष्ट होना चाहिए। व्यक्तित्व प्राय: दो प्रकार के होते हैं - दूसरों से प्रभावित होनेवाले और दूसरों को प्रभावित करनेवाले। आलोचक का व्यक्तित्व वास्तव में इन दोनों की मध्य कोटि का होना चाहिए। उसका दृष्टिकोण विस्तृत हो, स्वभाव गंभीर हो, विचार उदात्त हो, साथ-साथ सहानुभूति भी हो।

आलोचक में उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण गुणों का होना आवश्यक है। कुछ गुण पाठक से सबद्ध हैं, कुछ कवि तथा कुछ समालोचक से और इन सबके होने से ही समालोना आदर्श बनती है।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. ..... अर्थ की दृष्टि से आलोचना की अपेक्षा समालोचना अथवा समीक्षा शब्द अधिक उपयुक्त है।

   (क) व्युत्पत्तिगत (ख) भावगत (ग) शब्दगत (घ) उत्पत्तिमूलक

2. तुलनात्मक आलोचना का प्रादुर्भाव ..... की आलोचना से हुआ।

   (क) डॉ. मोल्टन (ख) ड्राइडन (ग) सेंट ब्यॅव (घ) जोसेफ एडिसन

3. प्राय: ..... आलोचना का परिणाम कटु विवाद होता है।

   (क) निर्णयात्मक (ख) मार्क्सवादी (ग) तुलनात्मक (घ) मनावैज्ञानिक

4. आलोचक को ..... के समान नीर-क्षीर विवेकी होना आवश्यक है।

   (क) अध्यापक (ख) व्यापारी (ग) न्यायाधीश (घ) वकील

5. भावयत्री प्रतिभा का संबंध ..... से होता है।

   (क) कवि (ख) लेखक (ग) भावक (घ) भावनाशील व्यक्ती

6. हडसन तथा फेलेट ने आलोचक के ..... गुण को काफी महत्त्व दिया है।

   (क) विस्तृत ज्ञान (ख) सहृदयता (ग) नि:ष्पक्षता (घ) अंतर्दृष्टि

7. शास्त्रीय मानदंडो के रूप में जब किन्हीं सामान्य नियमों की स्थापना की जाती है तब उसे ..... आलोचना कहा जाता है।

   (क) मार्क्सवादी (ख) मनावैज्ञानिक (ग) सैद्धांतिक (घ) तुलनात्मक

8. ..... आलोचना का प्रधान उद्देश्य रनागत पात्रों की प्रवृत्तियों की, आदर्शों की एवं भावधाराओं की अत: प्रेरणाओं का मनोविश्लेषण करना है।

   (क) मार्क्सवादी (ख) मनोवैज्ञानिक (ग) सैद्धांतिक (घ) तुलनात्मक

9. छायावाद के ऱ्हास के साथ हिंदी में ..... आलोचना का उदय हुआ।

(क) मनोवैज्ञानिक (ख) मार्क्सवादी (ग) सैद्धांतिक (घ) तुलनात्मक

10. साहित्य का मोती समाज की सीपी से ही उत्पन्न होता है ..... का कथन है।

(क) काडवेल (ख) हाडसन (ग) रिचर्डस (घ) एडिसन

(आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. आलोचना के लिए पर्यायवादी शब्द कौन-कौनसे हैं।?
2. व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से आलोचना का क्या अर्थ है?
3. समालोचना शब्द का अर्थ क्या है?
4. अनुसंधान का प्रमुख कार्य कौनसा होता है?
5. आई. ए. रिचर्डस् की आलोचना की परिभाषा क्या है?
6. तुलनात्मक आलोचना किसे कहा जाता है?
7. प्रतिभा के कौनसे दो भेद माने गए हैं?
8. 'कवियों की आलोचना केवल कवि ही कर सकते हैं' किसने कहा?
9. किस आलोचना में शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर रचनाओं का मूल्य निर्धारण करना पडता है?
10. मनोवैज्ञानिक आलोचना का मूल ध्येय क्या होता है?

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **धातु** - क्रिया का मूल रूप
2. **रिझना** - प्रसन्न होना
3. **परिमार्जित** - साफ, निर्मल
4. **बुधजन** - विद्वत जन
5. **छिद्रान्वेषी** - दोष ढूँढनेवाला
6. **नीर-क्षीर विवेकी** - न्यायी, उचित न्याय देनेवाला, निष्पक्ष होकर न्याय देनेवाला
7. **अन्वेषक** - संशोधक, शोधकर्ता, अनुसंधाता
8. **उपसर्ग** - वह अव्यय जो शब्द के पहले जोडा जाता है और उसके अर्थ में विशेषता लाता है।

3.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) 1. शब्दगत 2. जोसेफ एडिसन 3. तुलनात्मक

4. न्यायाधीश 5. भावक 6. अंतर्दृष्टि

7. सैद्धांतिक 8. मनोवैज्ञानिक 9. मार्क्सवादी आलोचना

10. काडवेल

(आ) 1. आलोचना के लिए पर्यायवादी शब्द है - समीक्षा, समालोचना और विवेचना।

2. व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से आलोचना का अर्थ है - किसी वस्तु या कृति को सम्यक रूप से देखना या उसका मूल्यांकन करना।

3. समालोचना शब्द का अर्थ है - संतुलित दृष्टि से किसी रचना के गुण-दोषों का विवेचन।

4. अनुसंधान का प्रमुख कार्य - अज्ञात तथ्यों की खोज अथवा ज्ञात तथ्यों की नवीन व्याख्या है।

5. आई. ए. रिचर्डस की आलोचना की परिभाषा है - 'To set up as a critic is to set up as a judge of values.' अर्थात, मूल्य निर्धारित करना याने आलोचना ही है।

6. 'जब एक ही विषय पर दो या अधिक साहित्यकारों की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता हैं, तो वह 'तुलनात्मक आलोचना' कही जाती है।

7. प्रतिभा के कारयत्री प्रतिभा और भावयत्री प्रतिभा ये दो भेद माने गए हैं।

8. 'कवियों की आलोचना केवल कवि ही कर सकता है' यह वाक्य बेन जॉनसन ने कहा है।

9. सैद्धांतिक आलोचना में शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर रचनाओं का मूल्य निर्धारण करना पडता है।

10. मनावैज्ञानिक आलोचना का मूल ध्येय आलोच्य कृति के मूल भावों तथा प्रेरणाओं का विश्लेषण, कृतिकार के मन का अध्ययन करते हुए करना होता है।

3.7 सारांश :

1. समीक्षा, समालोचना तथा विवेचना शब्द आलोचना के लिए पर्यायवाची शब्द के रूप में स्वीकार किए गए हैं। लेकिन शब्दगत अर्थ की दृष्टि से समालोचना अथवा समीक्षा शब्द अधिक उपयुक्त है।

2. कुछ लोग अनुसंधान, साहित्यिक इतिहास और काव्यशास्त्र को आलोचना के अंतर्गत ही मानते हैं; लेकिन आलोचना का स्वरूप इनसे भिन्न है।

3. अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने आलोचना को परिभाषा में बाँधने की कोशिश की है। इन परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि, आलोचना में अर्थ का स्पष्टीकरण, विषय का वर्गीकरण तथा निर्णय की प्रधानता ये तीन बातें मुख्य होती हैं। आलोचना का उद्देश्य लेखक और पाठक की रूचि का परिष्कार करना है।

4. आलोचना के प्रकार हैं - सैद्धांतिक आलोचना, मनोवैज्ञानिक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, मार्क्सवादी आलोचना। सैद्धांतिक आलोचना में शास्त्रीय मानदंडो के रूप में सामान्य नियमों की स्थापना की जाती है। तुलनात्मक आलोचना में समान विषयों पर रचित एक से अधिक साहित्यकारों की कृतियों का अध्ययन किया

जाता है। मनोवैज्ञानिक आलोचना में रचनागत पात्रों की, प्रवृत्तियों की, आदर्शों की एवं भावधाराओं की अत: प्रेरणाओं का मनोविश्लेषण किया जाता है। मार्क्सवादी आलोचना में समाज की कसौटी पर साहित्य का मूल्यांकन किया जाता है। इस आलोचना में सामाजिक पक्ष को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

5. आलोचक का उत्तरदायित्व चौगुना बढ गया है। कलाकार और पाठक के बीच बढते हुए व्यवधान को दूर करते हुए उनके बीच एक स्वस्थ दृष्टिकोन की स्थापना करना आवश्यक हो गया हे। इसलिए आलोचक में सहृदयता, विस्तृत ज्ञान, निष्पक्षता, स्वाभाविक प्रतिभा, अंतर्दृष्टि, कवित्व शक्ति, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का होना, कृतिकार के साथ तादात्म्य, प्रेषण की क्षमता, निर्णयात्मक शक्ति, अभिव्यक्ति कौशल, सहानुभूति, औचित्यज्ञान आदि गुणों का होना आवश्यक होता है।

3.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित विषयोंपर टिप्पणियाँ लिखिए।

1. आलोचना का स्वरूप
2. सैद्धांतिक आलोचना
3. मनोवैज्ञानिक आलोचना
4. तुलनात्मक आलोचना
5. मार्क्सवादी आलोचना
6. आलोचक के गुण

3.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. विभिन्न समीक्षकों की समीक्षाओं का सूक्ष्म अध्ययन कीजिए और देखिए कि उन्होंने किन-किन समीक्षा पद्धतियों का उपयोग किया है?
2. हिंदी के किसी ग्रंथ को पढकर उसकी समीक्षा करने का प्रयास कीजिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. काव्यशास्त्र : डॉ. भगीरथ मिश्र
2. साहित्य विवेचन : सुमन-मल्लिक
3. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (भाग 1 और 2) : डॉ. गोविंद त्रिगुणायत
4. काव्यशास्त्र : डॉ. यतींद्रनाथ तिवारी
5. काव्यशास्त्र की रूपरेखा : डॉ. रामदत्त भारद्वाज
6. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान : डॉ. जगदीशप्रसाद कौशिक
7. हिंदी साहित्य कोश (भाग 1 और 2) : डॉ. धीरेंद्र वर्मा

○●○

सत्र VI : इकाई 4

छंद (मात्रिक, वर्णिक)

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय-विवेचन

4.3.1 'छंद' शब्द का अर्थ

4.3.2 छंद के अंग

4.3.2.1 चरण/पद

4.3.2.2 वर्ण और मात्रा

4.3.2.3 गण

4.3.2.4 यति/विराम

4.3.3 छंद के भेद

4.3.3.1 हिंदी के कुछ प्रमुख मात्रिक छंद

4.3.3.1.1 दोहा

4.3.3.1.2 तोमर

4.3.3.1.3 रोला

4.3.3.1.4 छप्पय

4.3.3.2 हिंदी के कुछ प्रमुख वर्णिक छंद

4.3.3.2.1 भुजंगप्रयात

4.3.3.2.2 इंद्रव्रजा

4.3.3.2.3 शार्दुलविक्रीडित

4.3.3.2.4 स्रग्धरा

4.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई (युनिट) पढने के बाद आप,

1. छंद विधा से परिचित होंगे।
2. छंद के अंगों से परिचित होंगे।
3. छंद के भेदों से परिचित होंगे।
4. मात्रिक और वर्णिक छंदो के बीच का अंतर समझ सकेंगे।
5. कुछ प्रमुख छंदों के लक्षणों से परिचित हो सकेंगे।
6. काव्य के अंतर्गत होनेवाले छंदों का रसास्वादन कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना :

'पद्य' और 'छंद' समानार्थक शब्द हैं। इसलिए जिस शास्त्र में पद्य वा छंद की रचना के नियमों और इसके भेद, नाम, लक्षण आदि के सम्बन्ध में विचार किया जाता है उसे छंदशास्त्र कहते हैं। अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा गणना तथा यति-गति आदि से सम्बधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्यरचना छंद कहलाती है। छंद शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। वेद के छ: अंगों में छंद भी एक अंग है। पिंगलाचार्य के 'छंदसूत्र' और 'अग्निपुराण' में छंदों के दो विभाग किए गए हैं - एक वैदिक और दूसरा लौकिक। इन दो वर्गों में छंदो का विभाजन शास्त्रीय होने की अपेक्षा व्यावहारिक अधिक है। इस विभाजन का मुख्य आधार छंदगत विशेषता न होकर वह साहित्य है, जिसमें वर्ग विशेष के छंदों का प्रयोग हुआ है। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त छंद वैदिक और वेदेतर अर्थात लौकिक साहित्य में प्रयुक्त छंद लौकिक माने जाते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से इनमें वर्णसंख्या और पाद-व्यवस्था का भी अंतर होता है।

4.3 विषय विवेचन :

4.3.1 'छंद' शब्द का अर्थ :

'छंद' शब्द 'छद्' धातु से बना है जिसका अर्थ आवृत्त करने या रक्षित करने के साथ-साथ प्रसन्न करना,

आह्लादित करना या खुश करना भी होता है। यह आह्लाद वर्ण या मात्रा की नियमित संख्या के विन्याय से उत्पन्न होता है। इस प्रकार, छंद की परिभाषा होगी 'वर्णों या मात्राओं के नियमित संख्या के विन्यास से यदि आह्लाद पैदा हो, तो उसे छंद कहते हैं।' 'काव्यशास्त्र की रूपरेखा' ग्रंथ में छंद की परिभाषा देते हुए लिखा है - ''छंद वह वैखरी ध्वनि है, जो प्रत्यक्षीकृत निरंतर तरंगभंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके।'' छंद का सर्वप्रथम उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिलता है। जिस प्रकार गद्य का नियामक व्याकरण है, उसी प्रकार पद्य का नियामक छंदशास्त्र है।

4.3.2 छंद के अंग :

छंद के अंग निम्नप्रकार हैं -

4.3.2.1 चरण :

• इसे पद या पाद भी कहते हैं।

• छंद के प्राय: 4 भाग होते हैं। इनमें से प्रत्येक को 'चरण' कहते हैं। दूसरे शब्दों में चतुष्पदी छंद के चतुर्थांश (चतुर्थ भाग) को चरण कहते हैं।

• कुछ छंदों में चरण तो चार होते हैं लेकिन वे लिखे दो ही पंक्तियों में जाते हैं, जैसे-दोहा, सोरठा आदि। ऐसे छंद की प्रत्येक पंक्ति को 'दल' (एवं चरण भी) कहते हैं।

• हिंन्दी में कुछ छंद छ: - छ: पंक्तियों (दलों) में लिखे जाते हैं, ऐसे छंद दो छंद के योग से बनते हैं, जैसे - कुण्डलिया (दोहा + रोला), छप्पय (रोला + उल्लाला) आदि।

• चरण दो प्रकार के होते हैं - सम चरण और विषम चरण। प्रथम व तृतीय चरण को विषम चरण तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण को सम चरण कहते हैं।

4.3.2.2 वर्ण और मात्रा :

○ **वर्ण / अक्षर :**

• एक स्वर वाली ध्वनि को वर्ण कहते हैं, चाहे वह स्वर ह्रस्व हो या दीर्घ।

• जिस ध्वनि में स्वर नहीं हो (जैसे हलन्त शब्द राजन् का 'न्', संयुक्ताक्षर का पहला अक्षर - कृष्ण का 'ष्') उसे वर्ण नहीं माना जाता। वर्ण को ही अक्षर कहते हैं।

○ **मात्रा :**

• किसी वर्ण या ध्वनि के उच्चारण-काल को मात्रा कहते हैं।

• ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसकी एक मात्रा तथा दीर्घ वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं। ह्रस्व वर्ण को **लघु** व दीर्घ वर्ण को **गुरू** कहते हैं।

• छंदशास्त्री ह्रस्व स्वर तथा ह्रस्व स्वर वाले व्यंजन वर्ण को लघु कहते हैं। लघु के लिए प्रयुक्त चिन्ह - एक पाई रेखा - ।

• इसी प्रकार, दीर्घ स्वर तथा दीर्घ स्वर वाले व्यंजन वर्ण को गुरू कहते हैं। गुरू के लिए प्रयुक्त चिन्ह - एक वर्तुल रेखा - S

• **लघु के अंतर्गत शामिल किये जाते हैं -**

ह्रस्व वर्ण : अ, इ, उ, ऋ (क, कि, कु, कृ),

चन्द्र बिन्दु वाले वर्ण : अँ, हँ

उदा. अँसुवर, हँसी,

संयुक्त व्यंजन वाले ह्रस्व वर्ण

उदा. नित्य शब्द का 'त्य'

• **गुरू के अंतर्गत शामिल किये जाते हैं -**

दीर्घ वर्ण : आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

(का, की, कू, के, कै, को, कौ)

अनुस्वार व विसर्ग वाले वर्ण

उदा. इं, विं, तः, धः

(इंदु) (बिंदु) (अतः) (अधः)

संयुक्ताक्षर का पूर्ववर्ती वर्ण

उदा. अग्र का अ, वक्र का व

हलन्त वर्ण के पहले का वर्ण

उदा. राजन् का ज

4.3.2.3 गण :

• गण का अर्थ है 'समूह'।

• यह समूह तीन वर्णों का होता है। गण में तीन ही वर्ण होते हैं, न अधिक न कम।

• वर्णिक छंदों की लय की रक्षा के लिए लघु गुरू वर्णों के क्रम का विधान किया गया है। तीन लघु गुरू वर्णों के संघात को एक **वर्णिक गण** कहा जाता है।

• अत: गण की परिभाषा होगी - 'लघु-गुरू के नियत क्रम से तीन वर्णों के समूह को **गण** कहा जाता हैं।

गणों की संख्या 8 है -

यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण

इनके नाम, स्वरूप और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं -

	नाम	लक्षण	स्वरुप	उदाहरण	सांकेतिक अक्षर
1	यगण	लघु गुरू गुरू	।SS	वियोगी	य
2	मगण	गुरू गुरू गुरू	SSS	मायावी	म
3	तगण	गुरू गुरू लघु	SS।	वाचाल	त
4	रगण	गुरू लघु गुरू	S।S	बालिका	र
5	जगण	लगु गुरू लघु	।S।	सयोग	ज
6	भगण	गुरू लगु लघु	S।।	शावक	भ
7	नगण	लगु लघु लघु	।।।	कमल	न
8	सगण	लगु लघु गुरू	।।S	सरयू	स

• गणों को याद रखने के लिए सूत्र -

यमाताराजभानसलगा

इसमें पहले आठ वर्ण गणों के सूचक हैं और अन्तिम दो वर्ण लघु (ल) व गुरू (ग) के।

• सूत्र से गण प्राप्त करने का तरीका -

बोधक वर्ण से आरंभ कर आगे के दो वर्णों को ले लें। गण अपने-आप निकल आएगा।

उदाहरण - 'य' गण किसे कहते हैं

यमाता

।SS

अत: यगण का रूप हुआ - लघु गुरू गुरू (।SS)

4.3.2.4 यति/विराम/विश्राम :

• छंद में नियमित वर्ण या मात्रा पर साँस लेने के लिए रूकना पडता है, इसी रूकने के स्थान को यति या विराम कहते हैं।

• छोटे छंदों में साधारणत: यति चरण के अन्त में होती है; पर बडे छंदों में एक ही चरण में एक से अधिक यति या विराम होते हैं।

• यति का निर्देश प्राय: छंद के लक्षण (परिभाषा) में ही कर दिया जाता है। जैसे मालिनी छंद में पहली यति 8 वर्णों के बाद तथा दूसरी 7 वर्णों के बाद पडती है।

4.3.3 छंद के भेद :

हिंदी में मुख्य रूप से दो प्रकार के छंद होते हैं -

1. मात्रिक छंद या जाति
2. वर्णिक छंद या वृत्त

1. मात्रिक छंद :

मात्रिक छंद वे हैं, जिनके प्रत्येक चरण में निश्चित मात्रा गणना की व्यवस्था होती है, अर्थात मात्राओं की एक निश्चित संख्या प्रत्येक चरण में वर्तमान होती है।

• प्रमुख मात्रिक छंद -

1. सम मात्रिक छंद : अहीर (11 मात्रा), तोमर (12 मात्रा), मानव (14 मात्रा); अरिल्ल, पद्धरि/पद्धटिका, चौपाई (सभी 16 मात्रा); पीयूषवर्ष, सुमेरु (दोनों 19 मात्रा), राधिका (22 मात्रा), रोला, दिक्पाल, रूपमाला (सभी 24 मात्रा), गीतिका (26 मात्रा), सरसी (27 मात्रा), सार (28 मात्रा), हरिगीतिका (28 मात्रा), तांटक (30 मात्रा), वीर या आल्हा (31 मात्रा)।

2. अर्द्धसम मात्रिक छंद : बरवै (विषम चरण में - 12 मात्रा, सम चरण में - 7 मात्रा), दोहा (विषम - 13, सम - 11), सोरठा (दोहा का उल्टा), उल्लाला (विषम - 15, सम - 13)।

3. विषम मात्रिका छंद : कुण्डलिया (दोहा + रोला), छप्पय (रोला + अल्लाला)।

आपके पाठ्यक्रम में इनमें से **दोहा, तोमर, रोला, छप्पय** का अध्ययन है।

2. वर्णिक छंद :

वर्णिक वृत्त वे हैं, जिनमें प्रत्येक चरण का निर्माण अक्षरों या वर्णों की एक निश्चित संख्या एवं व्यवस्थित योजना के अनुसार होता है।

• प्रमुख मात्रिक छंद - प्रमाणिका (8 वर्ण); स्वागता, भुजंगी, शालिनी, इन्द्रव्रज्रा, दोधक (सभी 11 वर्ण); वंशस्थ, भुजंगप्रयात, द्रुतविलम्बित, तोटक (सभी 12 वर्ण); वसंततिलका (14 वर्ण); मालिनी (15 वर्ण); पंचचामर, चंचला (सभी 16 वर्ण); मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी (सभी 17 वर्ण), शार्दुल विक्रीडित (19 वर्ण), स्त्रग्धरा (21 वर्ण), सवैया (22 से 26 वर्ण), घनाक्षरी (31 वर्ण), रूपघनाक्षरी (32 वर्ण), देवघनाक्षरी (33 वर्ण), कवित्त/मनहरण (31-33 वर्ण)।

आपके पाठ्यक्रम में इनमें से **भुजंगप्रयात, इंद्रव्रजा, शार्दुलविक्रीडित, स्रग्धरा** का अध्ययन है।

4.3.3.1 मात्रिक छंद :

4.3.3.1.1 दोहा :

लक्षण : यह अर्धसममात्रिक छंद है। इसके विषम चरणों में 13-13 एवं सम चरणों में 11-11 मात्राएं होती हैं। विषम चरणों के अंत में प्राय: लघु-गुरू क्रम या सगण पाया जाता है। सम चरणों में अंतीम तीन मात्राओं की योजना अनिवार्यत: लघु-गुरू क्रम से होती है।

उदा. 1. मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरी सोय।

SS ।। SS ।S, SS S।S S।,

22 11 22 12, 22 212 21

(प्र. चरण) 13 मात्राएँ, (द्‌वि. चरण) 11 मात्राएँ

2. मुरली वाले मोहना, मुरली नेक बजाय।
तेरो मुरली मन हरो, घर अँगना न सुहाय॥

4.3.3.1.2 तोमर :

लक्षण : यह सममात्रिक छंद है इसके प्रत्येक चरण में 12 मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में क्रमश: गुरू लघु होते हैं।

उदा. 1. जय राम शोभा धाम

।। S। SS S। = 12

दायक विनत विश्राम

S।। ।।। SS। = 12

धृत त्रोन वर धर चाम

।। S। ।। ।। S। = 12

पुन दंड प्रबल प्रताप

।। S। ।।। ।S। = 12

2. चौदह सहस रनधीर
अति भीम राक्षस वीर

खरदूषनादि कराल
तुमने हने तिहि काल
- उत्तर रामचरित

4.3.3.1.3 रोला :

लक्षण : रोला सममात्रिक छंद होता है। इसके प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। 11 और 13 पर यति होती है।

उदा. यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै।

।S ।S S। S। S । । । । SS = 24

पर-स्वारथ के काज, शीश आगे धर दीजै।

।।S ।। S S। S । SS । । SS = 24

4.3.3.1.4 छप्पय :

लक्षण : यह मात्रिक विषम छंद है और मिश्र वर्ग के (दो छंदो के मिश्रण से बना) अंतर्गत आता है। यह रोला तथा उल्लाल्ला छंदो के योग से बनता है। चरणों की संख्या छ: होती है। प्रथम चार चरण 24-24 मात्राओं के रोला छंद के तथा अंतिम दो चरण 28-28 मात्राओं के उल्लाल्ला छंद के होते हैं।

'उल्लाला' छंद के रूप प्रचलित हैं - प्रथम उल्लाला और द्वितीय उल्लाला। प्रथम उल्लाला छंद के प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ होती हैं और 13 मात्राओं पर यति होती है। द्वितीय उल्लाला में 28 मात्राएँ होती हैं और प्रथम 15 मात्राओं के बाद यति होती है। छप्पय में प्रयुक्त उल्लाला प्रधानत: 28 मात्राओं का होता है।

उदा. 1. चेरी भी वह आज कहाँ कल थी जो रानी

SS S ।। S। ।S ।। S S SS = 24

दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी?

SS ।। S S। ।S S ।। ।। = 24

अबला जीवन हाय! तुमारी यही कहानी।

।।S S।। S। ।SS ।S ।SS = 24

आँचल में है दूध और आँखों में पानी

S।। S S S। S। SS S SS = 24

मेरा शिशु संसार यह दूध पिये परिपुष्ट हो।

SS।। SS। ।। S। ।S ।।S। S = 26

पानी के हो पात्र तुम प्रभो ! रूष्ट या तुष्ट हो !

SS S S S। ।। ।S S। S S। S = 26

- मैथिलीशरण गुप्त

2. निलाम्बर परिधान, हरित तट पर सुंदर है। = 24

सूर्य चंद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है। (रोला)

नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल हैं। = 24

बन्दीजन खगवृंद, शेष फन सिंहासन है। (रोला)

करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की। = 28

हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की। (उल्लाला)

4.3.3.2 वर्णिक छंद :

4.3.3.2.1 भुजंगप्रयात :

लक्षण : यह समवर्णिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 12 **वर्ण** तथा **चार यगण** होते हैं। यह संस्कृत का प्रचलित छंद है।

(यगण - लघु गुरू गुरू)

उदा. जिसे जन्म की भूमि भाती नहीं है। = 12

।SS, । S S, ।SS, ।SS

जिसे देस की याद आती नहीं है। = 12

।SS, । S S, ।SS, ।SS

कृतघ्नी भला कौन ऐसा मिलेगा? = 12

।SS, । S S, ।SS, ।SS

उसे देख क्या जी किसी का खिलेगा? = 12

।SS, । S S, ।SS, ।SS

4.3.3.2.2 इंद्रव्रजा :

लक्षण : यह समवर्णिक छंद है, इसके प्रत्येक चरण में 11 वर्ण होते हैं, दो तगण (SS।), एक जगण (S।S) तथा अंत में दो गुरू (SS) होते हैं।

उदा. माता यशोदा हरि को जगावै। = 11

प्यारे उठो मोहन नैन खोलो। = 11

द्वारे खडे गोप बुला रहे हैं। = 11

गोविंद दामोदर माधवेति।। = 11

4.3.3.2.3 शार्दुलविक्रीडित :

लक्षण : यह समवर्णीक छंद है, इसके प्रत्येक चरण में 19 वर्ण होते हैं, सातवें और बारहवें वर्ण पर यति होती है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमश: म, स, ज, स, त, त, गण आते हैं तथा अंत में गुरू आता है।

उदा. **रूपोद्यान-प्रफुल्ल-प्राय कलिका राकेन्दु-बिम्बानना**

SSS, ।।S, ।S।, ।।S, SS।, SS।,S

मगण सगण जगन सगण तगण तगण गुरू

तन्वंगी - कलहासिनी सुरसिका क्रीडा-कला-पुत्तली।

SSS ।।S।S। ।।S SS। SS। S

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गुरू

शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीलामयी

SSS। ।S। S।।S SS। SS। S

मगण सगण जगन सगण तगण तगण गुरू

श्रीराधा मृदुभाषिणी मृग-दृगी माधूर्य सन्मूर्ति थीं।

SSS ।।S ।S ।। ।S SS। SS। S

मगण सगण जगन सगण तगण तगण गुरू

- हरिऔध : प्रियप्रवास

4.3.3.2.4 स्रग्धरा :

लक्षण : यह समवर्णीक छंद है, इसके प्रत्येक चरण में 21 वर्ण होते हैं, गण - म (SSS), र (S।S), भ (S।।), न (।।।) य (।SS), य (।SS), य (।SS), यति - 7,7,7, पर; कुछ विद्वानों के मतानुसार सातवें और चौदहवें वर्णों पर।

उदा. 1. नीचे पद्मासनस्थ स्तिमित दृग किये, दृष्टि अंतर्हिता थी। = 21

SSS, S।S,S ।।,। ।।, ।S S,। SS,।S S

म र भ न य य य

ऊँचे नासापुटों में अविचल स्वर थे, सूर्यचंद्राख्य दोनो। = 21

- सिद्धार्थ

2. मोरे भौने ययू को, कह हु सुत कहाँ ते लिए आवते हो?

भा का आनंद आजी, तुम फिरि फिरि कै माथ जो नावते हो

बोले - माता बिलोक्यो, फिरत यह चमू बाग में स्रग्धरे ज्यों

काढी माला रू मारे, विपुल रिपु बली अश्व को जीति के त्यों

- सरयूप्रसाद मिश्र

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. नियमित संख्या के विन्यास से यदि आह्लाद पैदा हो, तो उसे ..... कहते हैं।

   (क) छंद (ख) मात्रा (ग) गण (घ) यति

2. छंद शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ..... में मिलता है।

   (क) ऋग्वेद (ख) सामवेद (ग) यजुर्वेद (घ) नाट्यशास्त्र

3. एक स्वर वाली ..... को वर्ण कहते हैं।

   (क) ध्वनि (ख) मात्रा (ग) यति (घ) रचना

4. किसी वर्ण या ध्वनि के उच्चारण-काल को ..... कहते हैं।

   (क) मात्रा (ख) अवधि (ग) गण (घ) यति

5. छंदशास्त्री ह्रस्व स्वर तथा ह्रस्व स्वर वाले व्यंजन वर्ण को ..... कहते हैं।

   (क) लघु (ख) गुरू (ग) ध्वनि (घ) गण

6. दीर्घ स्वर तथा दीर्घ स्वर वाले व्यंजन वर्ण को ..... कहते हैं।

   (क) गुरु (ख) लघु (ग) ध्वनि (घ) गण

7. लघु-गुरु के नियत क्रम से तीन वर्णों के समूह को ..... कहा जाता हैं।

   (क) मात्रा (ख) अवधि (ग) गण (घ) यति

8. छंद में नियमित वर्ण या मात्रा पर साँस लेने के लिए रुकना पडता हैं, इसी रुकने के स्थान को …… कहते हैं।

(क) यति (ख) अवधि (ग) गण (घ) चरण

9. जिनके प्रत्येक चरण में निश्चित मात्रा गणना की व्यवस्था होती है उसे …… छंद कहते हैं।

(क) मात्रिक (ख) वर्णिक (ग) मुक्त

10. जिनमें प्रत्येक चरण का निर्माण अक्षरों या वर्णों की एक निश्चित संख्या एवं व्यवस्थित योजना के अनुसार होता है उसे …… छंद कहते हैं

(क) मात्रिक (ख) वर्णिक (ग) मुक्त

11. विषम चरणों में 13-13 एवं सम चरणों में 11-11 मात्राएं …… छंद में होती हैं।

(क) दोहा (ख) तोमर (ग) रोला (घ) छप्पय

12. …… छंद के प्रत्येक चरण में 12 मात्राएँ होती हैं।

(क) दोहा (ख) तोमर (ग) रोला (घ) छप्पय छंद

13. …… छंद के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं।

(क) दोहा (ख) तोमर (ग) रोला (घ) छप्पय छंद

14. …… रोला तथा उल्लाल्ला छंदो के योग से बनता है।

(क) दोहा (ख) तोमर (ग) रोला (घ) छप्पय छंद

15. …… समवर्णीक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण तथा चार यगण होते हैं।

(क) भुजंगप्रयात (ख) इंद्रव्रजा (ग) स्रग्धरा

16. …… समवर्णीक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 11 वर्ण होते हैं, दो तगण (SSI), एक जगण (SIS) तथा अंत में दो गुरू (SS) होते हैं।

(क) भुजंगप्रयात (ख) इंद्रव्रजा (ग) स्रग्धरा

17. …… समवर्णीक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 19 वर्ण होते हैं, सातवें और बारहवें वर्ण पर यति होती है।

(क) शार्दुलविक्रीडित (ख) इंद्रव्रजा (ग) स्रग्धरा

18. …… समवर्णीक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 21 वर्ण तथा म, र, भ, न एवं तीन यगण होते हैं।

(क) भुजंगप्रयात (ख) इंद्रव्रजा (ग) स्रग्धरा

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **वैखरी** - वाणी का एक प्रकार, वाक्-शक्ति, कंठ से उच्चरित होने वाला स्वर, वाग्देवी; सरस्वती।
2. **ययू** - अश्वमेध यज्ञ का अश्व
3. **आजी** - आज
4. **(स्रग्धर) स्रक् (माला), धरे (धारण किए हुए)** - माला पहने हुए

4.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. छंद	2. ऋग्वेद	3. ध्वनि	4. मात्रा
5. लघु	6. गुरू	7. गण	8. यति
9. मात्रिक	10. वर्णिक	11. दोहा	12. तोमर
13. रोला	14. छप्पय	15. भुजंगप्रयात	16. इंद्रव्रजा
17. शार्दुलविक्रीडित	18. स्रग्धरा.		

4.7 सारांश :

1. मुख्य रूप से छंद दो प्रकार के होते हैं - मात्रिक और वर्णीक। मात्रिक छंदों में मात्राओं का विचार किया जाता है और वर्णीक छंदो में वर्णों का।

2. छंदो के मुख्य चार अंग होते है - चरण, मात्रा तथा वर्ण, यति और गण।

3. छंदशास्त्र में केवल स्वरों को ही वर्ण माना जाता है। वर्ण दो प्रकार के होते हैं - लघु और गुरू। लघु का चिन्ह है - 'I' और गुरू का चिन्ह है - 'S'। लघु-गुरू के नियत क्रम से तीन वर्णों के समूह को गण कहा जाता है। गणों की कुल संख्या 8 हैं। लघु वर्ण की एक और गुरू वर्ण की दो मात्राएँ मानी जाती हैं।

4. रोला और तोमर सममात्रिक छंद हैं, दोहा अर्धसममात्रिक है तो छप्पय मिश्र अंतर्गत आता है।

5. भुजंगप्रयात, इंद्रव्रजा, शार्दुलविक्रीडित और स्रग्धरा सब समवर्णीक छंद हैं।

4.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए।

1. दोहा	2. तोमर
3. रोला	4. छप्पय
5. भुजंगप्रयात	6. इंद्रव्रजा
7. शार्दुलविक्रीडित	8. स्रग्धरा

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. हिंदी के 'साकेत' 'कामायनी' महाकाव्य तथा 'पंचवटी' 'यशोधरा' खंडकाव्यों को पढकर उनमें प्रयुक्त छंदों को ढूंढीएं।
2. पाठ्यक्रम में दिए गए छंदों के अन्य उदाहरण ढूंढीए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. साहित्य के सिद्धांत विश्लेषण एवं समीक्षा : आ. गिरिराजदत्त त्रिपाठी प्रगती प्रकाशन, आगरा ३.
2. हिंदी साहित्य कोश (भाग १) : सम्पा. धीरेंद्र वर्मा, प्रकाशक ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी.
3. काव्यशास्त्र की रूपरेखा : डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु.

○●○